(गोविन्द माधव)

संशय से पूर्ण निवृत्ति

(पुस्तक संख्या–33)

विनयावनत–

- ब्रह्मशंकर शास्त्री

यथार्थ बोध –

भारतवर्ष को विश्व का आध्यात्मिक गुरू माना जाता है। आज भी विश्व के अनेक देशों के लोग भारतवर्ष में शान्ति की खोज में आते है,क्योंकि समग्र विश्व में भारत के आध्यात्मिक मूल्यों ,रहस्यों को विशिष्ट समझा जाता है। इस विशिष्टता के लिए भारतवर्ष में जन्में दो महापुरूषों का महत्वपूर्ण योगदान है। एक महापुरूष वेदव्यास तथा दूसरे आद्य शंकराचार्य जी । भारतवर्ष तथा विश्व में अनेक दार्शनिक ,विचारक तथा विद्वान महानुभाव उत्पन्न हुये परन्तु उक्त दोनों की बराबरी कोई नहीं कर सका। महर्षि वेदव्यास ने चार विशिष्ट कार्य किये। (एक)वेदों को विषयानुसार ऋक् ,साम ,यजु तथा अथर्ववेद के रूप में संकलित किया तथा उन्हें अपने चार शिष्यों पैल ,जैमिनी वैशम्पायन,सुमन्तु को पढ.ाया । (दो) एक लाख वाले श्लोक 'महाभारत ' ग्रन्थ की रचना की । (तीन) दार्शनिक ग्रन्थ 'ब्रहमसूत्र'को लिखा। यह ग्रन्थ शेष पांच भारतीय दार्शनिक ग्रन्थों सांख्य, योग ,न्याय ,मीमांसा ,वैशेषिक में श्रेष्ठ समझा जाता है। (चार) 4लाख श्लोक वाले अठारह पुराणों की रचना की। भारतवर्ष को विश्व का आध्यात्मिक गुरू इसी आध्यात्मिक वाड.मय के कारण माना जाता है। आद्य शंकराचार्यजी ने उपरोक्त ग्रन्थों को आधार मानकर भारत में फैले अन्य मतों के भ्रमक सिद्धान्तों का खण्डन किया तथा परमात्मा की अनुभूति की प्रक्रिया के लिए अनेक ग्रन्थ लिखे।

पवित्र वेदों को ईश्वरीय वाणी माना जाता है। वेदों का अन्तिम भाग वेदान्त कहा जाता है ,जिसे 'उपनिषद ' भी कहते है। मुख्य 'उपनिषद ' ग्यारह है । भारतीय मनीषियों ने परमात्मा की अनुभूति के तीन विशिष्ट साधन बतायें जिन्हें प्रस्थानत्रयी कहा जाता है। इस प्रस्थानत्रयी में तीन ग्रन्थ हैं (एक) वेदों का ज्ञानकाण्ड 'उपनिषद'। (दो) महर्षि वेदव्यास रचित दार्शनिक ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र। (तीन) भगवान श्रीकृष्ण ,द्वारा उपदेशित ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता'। उपनिषद, ब्रह्मसूत्र तथा श्रीमद्भगवद्गीता जिन्हें क्रमशः वैदिक प्रस्थान ,दार्शनिक प्रस्थान तथा स्मार्त प्रस्थान कहा जाता है जिसमें श्रीमद्भगवद्गीता को श्रेष्ठता प्राप्त है। ऐसा भारतीय मनीषी मानते हैं। उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त वेदों के चार उपवेद आयुर्वेद, धनुर्वेद, गर्न्धववेद तथा शिल्पवेद हैं और ब्राह्मण ग्रन्थों ऐतरेय, शतपथ, ताण्डय, गोपथ हैं। अपराविद्या के 6 ग्रन्थ शिक्षा ,कल्प, व्याकरण ,निरूक्त ,छन्द तथा ज्योतिष हैं ,साथ में अनेक स्मृतियाँ तथा संहितायें भी हैं। इस प्रकार वैदिक सनातन धर्म का विशाल आध्यात्मिक वाङमय है।

उपनिषदों, दार्शनिक ग्रन्थों तथा श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेक मनीषियों ने भाष्य लिखे है। ब्रह्मसूत्र पर पाँच विशिष्ट आचार्यों शंकराचार्य ,रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य ,बल्लभाचार्य तथा निम्बार्काचार्य ने क्रमशः शारीरिक भाष्य ,श्रीभाष्य, पूर्णप्रज्ञभाष्य,अणुभाष्य, वेदान्त परिजात लिखकर अपने मतों (अद्वैत ,विशिष्टद्वैत ,द्वैत, शुदाद्वैत , द्वैताद्वैत)की स्थापना की । इसी प्रकार पंतजलिकृत योगदर्शन पर 'व्यास'तथा व्यासकृत भाष्य पर श्री वाचस्पति मिश्र ,विज्ञानभिक्षु ने भाष्य लिखे साथ ही भोज व रामानन्द, श्रीसदाशिवेन्द्र श्रीओमानन्दजी ने योगदर्शन पर भाष्य लिखे। इसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता पर आद्य शंकराचार्य ,श्रीरामानुजाचार्य,सन्तज्ञानेश्वर, महर्षि अरविन्द, बालगंगाधरतिलक, श्रीलप्रभुपाद, श्रीजयदयालगोयन्दका स्वामी रामसुखदासजी महाराज आचार्य रजनीश आदि आदि प्रमुख विद्वानों के भाष्य हैं। इन सबके अतिरिक्त मनु वशिष्ठ, याज्ञवल्वय द्वारा रचित स्मृति ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण ग्रन्थ भी विशिष्ट हैं। यह सबका सब वैदिक सनातन धर्म के आधारभूत ग्रन्थ हैं जिनमें श्रीमद्भगवद्गीता परमात्मा की साक्षात् तथा प्रत्यक्ष वाणी होने के कारण दिव्य अलौकिक एवं विशिष्ट समझी जाती है।

भगवद्गीता वैदिक सनातन धर्म का आधार है क्योंकि इसमें वेदों तथा समग्र दार्शनिक ग्रन्थों के मूलभूत सिद्धान्तों का सार संग्रहीत है। अतीत में हुये विशिष्ट विद्वान तथा दार्शनिक महानुभावों जैसे महात्मागाँधी, बिनोवाभावे ,राधाकृष्णनन् आदि ने अपने जीवन का आधार समझा तथा वर्तमान में जो भी विशिष्ट संत तथा विद्वान हैं ,वे सभी इसे अपने जीवन का आधार मानते हैं, क्योंकि भगवद्गीता में किसी मत का उल्लेख नही है। जो शिक्षा है वह समग्र मानव जाति के लिए है। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दू धर्म का अध्यात्मिक संविधान है । प्रशासनिक तथा न्यायिक क्षेत्र में भी इस ग्रन्थ को हिन्दू धर्म का मूलभूत ग्रन्थ समझा जाता है। हिन्दुत्व इसी एक ग्रन्थ से परिभाषित होता है। जो लोग हिन्दुत्व की परिभाषा को जानना समझना चाहते है,उन्हें भगवद्गीता का समग्रता तथा गहनता से अध्ययन करना चाहिए तथा उसमें वर्णित विशिष्ट सिद्धान्तों को समझना चाहिए । दुःख का विषय है कि भारतवर्ष में ही प्रकट हुये इस विशिष्ट ग्रन्थ को आज हम विस्मृत कर चुके हैं। हमारी समग्र शिक्षा व्यवस्था से हमारें राष्ट्र की धरोहर तथा संस्कृति विलुप्त है। इसी कारण आज भारतवर्ष में अराजकता, हिंसा, व्याभिचार ,पाखण्ड, अनाचार, भष्टाचार प्रकट हो गया है।

आज भारतवर्ष में जैन, बौद्ध, सिख, आर्यसमाज आदि मत प्रचलित है वे सबके एवं वैदिक सनातन धर्म की शाखा–प्रशाखायें हैं। जैन मत ग्रन्थों की संख्या बारह है जिन्हे 'आगम' ग्रन्थ कहा जाता है । कल्पसूत्र ,भगवतीसूत्र, आचरांग सूत्र विशिष्ट ग्रन्थ है जिनमें जैनमत का आरम्भिक इतिहास महावीर स्वामी का जीवन वृतान्त तथा जैनभिक्षुओं के विधि संबधी आचार –विचारों का उल्लेख है। जैनमत के 5 महावृत हैं। (1)अहिंसा (2)सत्य (3)अस्तेय(4) अपरिग्रह तथा (5)ब्रह्मचर्य । कर्मफल के समापन हेतु तीन रत्न हैं। (1)सम्यक् दर्शन (2)सम्यक् ज्ञान (3)सम्यक् आचरण । जैनमत ग्रन्थों में जो भी वर्णित है वह सबका सब वैदिक सनातन धर्म के वैदिक, दार्शनिक तथा पौराणिक ग्रन्थों में पहले से ही उल्लिखित है। इस कारण जैनमत वैदिक सनातन का धर्म का एक अंश है । बौद्धमत के ग्रन्थों (1)सुतपिटक (2)विनय पिटक (3)अभिधम्म पिटक में क्रमशः धर्मोपदेश, मठ के नियम तथा दार्शनिक विषयों का समावेश है। 'धम्मपदं' बौद्धमत का विशिष्ट ग्रन्थ है। बौद्धमत के ग्रन्थों में जो भी विषय वर्णित है वह सबका सब भी वैदिक सनातन धर्म ग्रन्थों में पहले से ही उपलब्ध है । सिखमत का प्रमुख ग्रन्थ पवित्र गुरूग्रन्थ साहिब है जिसमें 36 महापुरूषो ंकी वाणी को संकलित किया गया है, जिसमें 6गुरूसाहब ,15भक्तों ,11भाटों तथा 4 निकटवर्ती सिखों की वाणी का संकलन है । ये सभी महापुरूष कालान्तर में वैदिक सनातन धर्म के अनुयायी थे। इस प्रकार ये भी वैदिक सनातनधर्म की शाखा है ।

आर्यसमाज मत के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती वेदों के विशिष्ट विद्वान थे। उन्होने ऋग्वेद के कुछ अंश का अनुवाद हिन्दी भाषा में करवाया तथा उनके ब्रह्मलीन होने के उपरान्त आर्यसमाज के विद्वान ने वेदों का अनुवाद किया। वेदों के विज्ञान को हिन्दी भाषा में संशोधित एवं परिवर्तित करने में आर्यसमाज का महत्वपूर्ण योगदान है । विशिष्ट तथ्य यह है कि स्वामी जी भगवद्गीता को बहुत सम्मान करते थे। उन्होने अपने विशिष्ट ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका में गीताजी के अध्याय 18/37 श्लोक का उल्लेख किया है। इस प्रकार कुछ वैचारिक मतभेद होकर भी आर्य समाज भी वैदिक सनातन धर्म से ही प्रकट हुआ । इस मत का आधार उपनिषद तथा दार्शनिक ग्रन्थ ही है ,जो वैदिक सनातन धर्म का आधार है।

वर्तमान समय में भारतवर्ष में अनेक मत प्रचलित है। वे सबके सब वैदिक सनातन धर्म के ही अंश है क्योंकि उनकी ध्यान पद्धति, सिद्धान्त, मत तथा क्रियायें और साहित्य

सबके सब पहले से ही वैदिक सनातन धर्म के ग्रन्थों में वर्णित है । मत तो अनेक है कुछ मत विशेष है– जैसे हरे रामा हरे कृष्णा,ब्रह्मकुमारीज ,दादाभाई–निरूपमा, मानव धर्म, सहजयोग ,कबीर पन्थ (इसमें भी कई मत प्रचलित है) राधास्वामी ,निरकांरी गायत्री संस्थान, सत्य साई आदि । अनेक नदियॉ अचल प्रतिष्ठा वाले एक समुद्र में मिल जाती है, क्योंकि समग्र नदियों का कारण तथा 'उदगम समुद्र ही है। समाप्ति समुद्र ही है। वैसे ही अनेक मतों का कारण तथा उनका उद्भव वैदिक सनातन धर्म के ग्रन्थों से हुआ है। कोई भी मत वैदिक सनातन धर्म के ग्रन्थों से पृथक् कुछ भी नहीं कह सका ।

विश्व में दो प्रमुख धर्म हैं– एक इस्लाम धर्म तथा दूसरा ईसाई धर्म। ईसाई धर्म का आध्यात्मिक संविधान पवित्र कुरआन हैं तथा ईसाई धर्म का प्रमुख आध्यात्मिक संविधान पवित्र बाइबिल है। पवित्र कुरआन को ईश्वरीय ग्रन्थ माना जाता है तथा हजरत मोहम्मद साहिब को पैगम्बर माना जाता है। ऐसा उल्लेख है कि हजरत मोहम्मद साहब पर हिरा नाम की पहाड.ी गुफा में पवित्र कुरआन की आयतें एक फरिश्ते के माध्यम से नाजिल (अवतरित) हुयी थी । ये घटना 610 ईसवी की है। परमात्मा का गुप्त संन्देश (वह्य)एक देवदूत (फरिश्ते)के माध्यम से अवतरित हुआ । इस कारण पवित्र कुरआन को ईश्वरीय वाणी कहा जाता है। हम सभी को इस मान्यता का सम्मान करना चाहिए। पवित्र बाइबिल में प्रभु ईसामसीह को परमात्मा का पुत्र कहा गया तथा पवित्र बाइबिल को ईश्वरीय पुस्तक कहा गया । यह पवित्र ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है ,जिसे पुराना नियम तथा नया नियम कहा जाता है। पवित्र बाइबिल के बारें में जैसी मान्यता है वैसा उनके अनुयायी मानते हैं। उनकी मान्यता का हमें सम्मान करना चाहिए ।

इस प्रकार हिन्दू धर्म का आध्यात्मिक संविधान भगवद्गीता है तथा इस्लाम धर्म का पवित्र कुरआन है और ईसाई धर्म का पवित्र बाइबिल है। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया वह परमात्मा के रूप में दिया हैं । यह तथ्य हमें भगवद्गीता के अध्ययन से ज्ञात होता हैं। उन्होने अपने अवतरण की क्रिया का उल्लेख करते हुये कहा कि 'मै प्रकृति को अधीन करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूॅ।(गीता–4/6) प्रकृति परमात्मा की वह रचनात्मक शक्ति है जो पृथ्वी सहित समग्र ब्रह्माण्ड (सूर्य,चन्द्र,ग्रह,उपग्रह) आदि की रचना परमात्मा की अध्यक्षता में करती है।

माया परमात्मा की पराशक्ति है जो जीव (मनुष्य)को इस जगत के आकर्षण में फसायें रखती है तथा परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होने देती ।

हम सभी प्रकृति तथा माया के अधीन है तथा प्रकृति, माया परमात्मा के अधीन है। यही परमात्मा तथा जीव (मनुष्य)में अन्तर है। (कुछ विद्वान प्रकृति तथा माया को एक ही मानते है तथा कुछ भिन्न मानते हैं) भगवद्गीता में प्रकृति के दो प्रकारों (अपरा, परा)का वर्णन है तथा माया के बारें में पृथक् वर्णन है। इस प्रकार भगवद्गीता से भगवान श्रीकृष्ण की स्थिति परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित होती है और वाल्मीकि रामायण से भगवान श्रीराम की प्रतिष्ठा परमात्मा के रूप में प्रकट होती है। इस कारण हिन्दू धर्म के आध्यात्मिक ऐसे संविधान भगवद्गीता के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण की मान्यता परमात्मा के रूप में है। वैसी ही भगवान श्रीराम की भी है। कलाओं की संख्या का अन्तर है। भगवान शब्द का प्रयोग परमात्मा के लिए भी होता है तथा ऋषियों के लिए भी होता है। जो कोई पुरूष अपने को भगवान के परमात्मा स्वरूप को प्रतिष्ठित कराना चाहे तो उसको प्रकृति तथा माया को अपने अधीन करना पडे.गा । ऐसा कोई व्यक्ति वर्तमान में प्रतीत नहीं होता । इस कारण जो लोग अपने को भगवान के रूप में प्रतिष्ठित कराकर वैसी ही पूजा उपासना करवाना चाहते है तो उन्हें प्रकृति की अधीनता को समाप्त करना पडे.गा तथा विराट स्वरूप का प्रदर्शन भी करना पडे.गा ।

भारत में कुछ लोग भारतीय संविधान को नहीं मानते परन्तु सत्य यह है कि हम भारतवासी भारतीय संविधान को मानने के लिए बाध्य हैं । कुछ लोगों की भारतीय संविधान में आस्था नहीं है, तो सरकार उन्हे आतंकवादी ,नक्सलवादी कहती है हम आध्यात्मिक संविधान को भी मानने को बाध्य है। क्या हम भारतबर्ष में प्रकट हुये आध्यात्मिक संविधान 'भगवद्गीता ' को नही मानेगे?(आस्था के नाम पर हम नही मानेगें तो कोई क्या कर लेगा ?सरकार तो कुछ नही करेगी परन्तु सरकार का भी सरकार परमात्मा तो अवश्य ही कुछ करेगा। एक पुत्र पिता की बात नही मानेगा तो पिता क्या कर लेगा ?परन्तु पिता श्राप अवश्य देगा जिससे पुत्र स्वतः ही नष्ट हो जायेगा ।

भगवद्गीता के अनुसार भगवान श्रीकृष्ण परमात्मा के रूप में है तथा भगवान श्रीराम भी इस रूप में प्रतिष्ठित हैं । भगवान शंकर ,श्रीगणेश ,संकटमोचन हनुमान ,माता भगवती आदि की आराधना देवगणों के रूप में होती है। उक्त मूर्तियों की प्रतिष्ठा मन्दिरों में हैं जिनको हिन्दू धर्माबलम्बी पूजते–उपासते है ,जो शास्त्र सम्मत है। इसके

अतिरिक्त किसी महापुरूष की प्रतिमा बनाकर उसकी पूजा उपासना करना शास्त्र सम्मत नही है, ऐसा शंकराचार्य जी का कथन है। आद्य शंकराचार्य जी ने चार मठों की स्थापना करके शंकराचार्यो को हिन्दू धर्म के अनुयायियों को शास्त्रों की आज्ञा से परिचित कराने का दायित्व सौपा था ,जिसे वर्तमान शंकराचार्य निभा रहे हैं। हम जब आस्था के आधार पर शास्त्रों के विषय के अतिक्रमण का प्रयास करते है तो समाज में अनेक विसंगतियॉ उत्पन्न हो जाती हैं। हमें मनमाना ,स्वेछाचारी आचरण कदापि नही करना चाहिए क्योंकि हम जिस प्रकार भारतीय संविधान को मानने को बाध्य है, वैसे ही हमारी बाध्यता आध्यात्मिक संविधान को मानने की है। हमें अपने आध्यात्मिक संविधान की धाराओं को जानना चाहिए और उसका पालन करना चाहिए।

○ ब्रह्मशंकर शास्त्री

● प्रकाशक की ओर से

मानव जीवन में नित्य निरंतर संशय प्रकट हुआ करते हैं तथा अधिकांश लोग इस कारण संशयग्रस्त रहते हैं। हमारे जीवन में अनेकों ऐसी स्थितियाँ आती हैं कि हम क्या करे? अथवा ऐसा भाव आ जाता है। यह साधारण संशय है कि मनुष्य किंकर्तव्यमूढ़ होता है। जीवन के उद्देश्य के प्रति संशय रहना, महत्वपूर्ण संशय है। इसका निवारण होना अति आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य अपने जीवन का जो उद्देश्य निश्चित कर लेता है वैसा ही आचरण करता है। इस कारण जीवन के उद्देश्य के प्रति संशय रहना ही प्रमुख संशय है। जीवन में जो भी संशय आते हैं उन सबका निवारण विचारशील मनुष्य को कर लेना चाहिए। इस संशय के निवारण हेतु शास्त्री जी द्वारा यह महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी गयी है। आशा है कि साधक लाभान्वित होंगे।

● प्रकाशक

▪ विनम्र निवेदन

संशय मनुष्य के विनाश का कारण है। संशयग्रस्त मनुष्य अपने कल्याण के मार्ग को खोज नहीं पाता है। जबकि संशयरहित मनुष्य अपने कल्याण के मार्ग को खोजकर अपने जीवन के परमपुरूषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। संशय कई प्रकार के होते हैं परन्तु परमात्मा के अस्तित्त्व के विषय में जब मनुष्य संशयग्रस्त हो जाता है तो वह कर्मों का आचरण निश्चित रूप से नहीं कर पाता है। इस कारण परमात्मा के विषय में मनुष्य को संशय नहीं रखना चाहिए कि उसका अस्तित्त्व नहीं हैं, अथवा वह हमें नहीं देख रहा है। परमात्मा अवश्य है और उसका निश्चित अस्तित्त्व है। यह तथ्य हमें अपने अंतःकरण में पुष्ट कर लेना चाहिए। परमात्मा के अस्तित्त्व के सम्बन्ध में संशय रहित हो जाना चाहिए। परमात्मा जब है तो वह हमारी प्रत्येक गतिविधि को, चेष्टा को भली प्रकार देख रहा है। यह विचार भी हमें पुष्ट कर लेना चाहिए। परमात्मा के अस्तित्त्व और उसके निरीक्षण का तथ्य हमें पूर्णतया स्वीकारना चाहिए। इस सम्बन्ध में कोई संशय हो तो हमें अपने मन से जबरन बाहर निकालना चाहिए।

परमात्मा के अस्तित्त्व के स्वीकारने के पश्चात प्रमुख संशय जीवन के लक्ष्य को लेकर होता है। मनुष्य के जीवन का क्या लक्ष्य है? यह भी निश्चित करने में मनुष्य बहुधा संशयग्रस्त रहता है। आज के मानव ने अपने जीवन के पृथक्–पृथक् उद्देश्य निश्चित कर लिये हैं। विशेषकर युवा वर्ग ने अपने जीवन के लक्ष्य को धन, सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा आदि तक सीमित कर दिया है। चूंकि मनुष्य पहले किसी उद्देश्य का निश्चय कर लेता है तत्पश्चात् उस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु तत्पर रहता है। इस कारण यदि हमने अपने जीवन के उद्देश्य को धन, पद, प्रतिष्ठा प्राप्ति तक सीमित कर लिया है तो हम उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहते हैं। जीवन के उद्देश्य को धन, पद, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा आदि तक सीमित कर लेना विशिष्ट संशय है। उस संशय को समझ कर तथा जीवन के उद्देश्य के निर्धारण में संशय का निवारण होना चाहिए। हमारे जीवन का मात्र एक उद्देश्य मोक्ष (मुक्ति) की प्राप्ति ही है। इसका संशय रहित निश्चय करके ही हम संशय रहित हो सकते है।

जीवन के इस उद्देश्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? इस बारे में जो संशय है वह विशाल है। क्योंकि आज अनेक लोगों ने इस मुक्ति के मार्ग पर अनेक संशय उत्पन्न कर दिये हैं, जिन्हें हम दूर करने में असमर्थ रहते हैं। मुक्ति किस प्रकार प्राप्त होगी? इस संशय का निवारण किया जावे तो हम जीवन के परम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति कर सकते है। मुक्ति के बारे में संशय है वह आध्यात्मिक संशय है जिसे हमारे मध्य रहने वाले कुछ महानुभावों ने ही उत्पन्न किया है। जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति के प्रति जो संशय है वह हमें स्वयं ही निवारित करना पड़ेगा। यदि हम मुक्ति के प्राप्ति के उपाय को सम्यक्रूपेण जान सके तो यह संशय निवारण की विशिष्टिता होगी ।

किसी मनुष्य ने जीवन पर्यन्त कर्म करके बहुत सा धन एकत्रित कर लिया है तथा बहुत सी सम्पत्ति एकत्र की है और बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है। अथवा उच्च पद प्राप्त कर लिया है परन्तु जो भी प्राप्त किया है वह सबका सब यहीं इस लोक में रहने वाला है। हमारी मृत्यु तक ही सीमित है। हमारी मृत्यु होते ही हमारे द्वारा एकत्र किये गये धन आदि की उपयोगिता हमारे लिये समाप्त हो जाती है पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य सबके सब मृत्यु तक ही साथ रहते है मृत्यु के पश्चात उनका कोई अस्तित्त्व नहीं है। यह तथ्य स्पष्ट और ध्रुव सत्य है। इस कारण धन, सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त करना हमारा तथा हमारे जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता है। जो वस्तु मृत्यु तक है वह समय सीमा से आबद्ध है इस कारण हमें संशय रहित होकर अपने जीवन के उद्देश्य को धन आदि की प्राप्ति तक सीमित कर देना मूर्खता ही है। हमें अपने जीवन के उद्देश्य को समझना चाहिए तथा उसकी प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। यह लघु पुस्तिका इसमें सहयोगी होगी ऐसी हमारी आशा है।

• संशय से पूर्ण निवृत्ति–

(1) संशय क्या है?–

मनुष्य के जीवन में संशय ऐसा भाव है जिससे वह किसी उद्देश्य, वस्तु , कर्म, व्यक्ति के बारे में सही–सही निश्चय नहीं कर पाता है तथा कुछ का कुछ निश्चित करके भ्रम में रहता है। प्रमुख संशय निम्न प्रकार हैं–

(क) उद्देश्य का संशय :– मनुष्य जीवन का क्या उद्देश्य है? इसका सही–सही निश्चय न कर पाने से उद्देश्य के निश्चय में संशय रहता है। आज हम जो मनुष्यों के विविध उद्देश्य तथा उद्देश्यों को लेकर जो भी कार्य हो रहे हैं वे इसी उद्देश्य के संशय का परिणाम हैं।

(ख) वस्तु का संशय :– जब एक वस्तु में समान धर्म (गुण) का प्रकटीकरण हो जाता है तो उसमें विशेष धर्म के प्रत्यक्ष रहने जो पारस्परिक प्रतिकूल भाव उत्पन्न हो जाते हैं तो यह वस्तु का संशय है।

(ग) कर्म का संशय :– मनुष्य अपने कार्य के प्रति भ्रमित हो जाता है और वह यह तय नहीं कर पाता है कि हमें क्या करना चाहिए ? और क्या नहीं करना चाहिए ? तो यह कर्म का सही–सही विनिश्चय न कर पाने के कारण किंकर्तव्यमूढ़ रहता है तो यह कर्म का संशय कहलाता है।

(घ) व्यक्ति का संशय :– जब हम किसी व्यक्ति के बारे में यह भी निश्चय नहीं कर पाते हैं कि अमुक व्यक्ति हमारा हित चाहता है या अहित और यह निश्चय न कर पाने से भ्रमपूर्ण स्थिति रहती है। यह व्यक्ति का संशय कहलाता है।

इस प्रसंग में जीवन का क्या उद्देश्य है ?तथा उसमें संशय क्या है? इस तथ्य की चर्चा होगी क्योंकि जीवन के उद्देश्य को सही से समझना तथा उस उद्देश्य की प्राप्ति करना ही प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है । परन्तु यह कर्तव्य जब तक पूरा नहीं किया जा सकता है तब तक हम संशय ग्रस्त होकर उस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील भी नहीं होते हैं। यदि उद्देश्य के प्रति संशय हो तो उद्देश्य की प्राप्ति

कदापि नहीं होगी क्योंकि पथ के संशय से मनुष्य पथ भ्रष्ट हो जाता है और वह अपना स्वयं विनाश कर लेता है। ''संशयात्मा विनश्यति'' यह गीता जी का वचन है। इसका अर्थ है कि संशय युक्त मनुष्य का विनाश स्वतः हो जाता है। इस कारण जीवन का उद्देश्य समझकर उसको संशय रहित होकर प्राप्त करने हेतु हमें सम्पूर्ण संशयों से पूर्ण निवृत होना पड़ेगा । जीवन के उद्देश्य को निश्चित करने के पहले मनुष्य की ज्ञान की स्थिति और उसके प्रगटीकरण के बारे विचार प्रस्तुत करना आवश्यक है।

(2) मानव का प्रगटीकरण :– मनुष्य माता के गर्भ में प्रकट होता है तथा मृत्यु के पश्चात अप्रकट हो जाता है। माता के गर्भ में मनुष्य (जीव) का प्रकटीकरण होता है परन्तु जन्म के उपरान्त ही प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। माता के गर्भ में जब जीव प्रकट होता है तो हमें उसके बारे कोई जानकारी नहीं होती है। उसके बारे में जानकारी न होना ही अनेक संशयों को स्वतः उत्पन्न करता है। जीव के बारे में क्या–क्या संशय रहते है इसका अवलोकन कीजिये–

(क) जीव कहाँ से आया? जीव जब माता के गर्भ में प्रकट होता है तो यह स्पष्ट नहीं होता, स्पष्ट नहीं कहा जा सकता कि वह कहाँ से आया? जब कोई तथ्य स्पष्ट नहीं होता तभी संशय की उत्पत्ति होती है जीव कहाँ से आया ? यह तथ्य अस्पष्ट है। मनुष्य मात्र, वैज्ञानिक यह तथ्य किसी भी उपाय से नहीं स्पष्ट कर सकते कि वह जीव माँ के गर्भ में कहाँ से आया? परन्तु वह माँ के गर्भ में आया इस कारण यह निश्चित है कि वह पहले कहीं था? जैसे कोई मनुष्य हमारे पास आये तो हम यह जानते हैं कि वह कहाँ से आया है? क्योंकि मनुष्य का हमारे पास आना यह स्पष्ट करता है कि वह पहले कहीं था और वहाँ से यहाँ आ गया है।

हम आये हुये मनुष्य से यह जानकारी कर सकते हैं कि वह कहाँ से आया है? परन्तु यहाँ पर ऐसी स्थिति नहीं है। हम जीव से पूँछ सके कि वह कहाँ से आया? जीव यह बताने में असमर्थ है कि वह कहाँ से आया? यह अत्यन्त विस्मयकारी स्थिति है। रहस्यप्रद भी है कि जीव आता है पर कहाँ से आता है? यह न तो जीव हमें बता सकता है और न ही हम यह जानकारी कर सकते हैं कि वह कहाँ से आया है? अभी तक कोई वैज्ञानिक, यंत्र, विधि नहीं उपलब्ध है कि वह हमें यह बता सके कि जीव कहाँ से आया है? यह संशय प्राथमिक है जिससे हमें परमात्मा के अस्तित्त्व को मानने

हेतु बाध्य होना पड़ता है। हम इस संशय की निवृत्ति हेतु इतना ही कह सकते हैं कि यह जीव परमात्मा के यहाँ से ही आया है।

(ख) जीव इससे पूर्व क्या था? जीव माता के गर्भ में आने के पूर्व क्या था? यह भी स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता है और न ही यह तथ्य जाना जा सकता है कि आया हुआ जीव माता के गर्भ के पहले क्या था? जैसे सामाजिक जीवन में कोई व्यक्ति किसी नये पद पर कार्य करने आता है तो वहाँ पर उपस्थित सम्पर्कित, सहयोगी यह अवश्य जानना चाहते हैं कि इससे पूर्व वह क्या था? तथा इससे पूर्व वह क्या–क्या था? हम उन्हें यह जानकारी देते हैं कि हम इससे पूर्व अमुक–अमुक थे। क्योंकि हमें यह ज्ञात रहता है कि हम अतीत में क्या–क्या रहे हैं। जीव क्या था? यह ज्ञात नहीं हो सकता है कि वह क्या था? वह हमें बता नहीं सकता कि वह क्या–क्या रहा है? जन्म के उपरान्त भी शिशु यह बताने में असमर्थ रहता है कि वह क्या था? और क्या–क्या था? हम भी इन दोनों प्रश्नों का समुचित उत्तर देने में असमर्थ हैं। विज्ञान भी हमें यह नहीं बता सकता है कि जीव क्या था? और वह क्या–क्या था? इस बारे में हमें भी संशय रहता है क्योंकि यह तथ्य जान पाना असम्भव है कि जीव क्या था? इस तथ्य का भी निश्चय न हो पाना तथा इसमें संशय रहना ही हमें परमात्मा के अस्तित्त्व को मानने को बाध्य करता है।

(ग) जीव किस स्थिति में था? : माता के गर्भ में आने के पूर्व जीव किस स्थिति में था? यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। संसार में प्रत्येक मनुष्य की स्थिति होती है। सामाजिक स्थिति से मनुष्य का मूल्यांकन होता है। और वह अपना मूल्यांकन अपनी स्थिति से कर लेता है। जगत में जितने मनुष्य हैं उनकी अपनी स्थिति है। शासक, राजनेता, प्रशासक, न्यायाधीश, प्रशिक्षक, शिक्षक तथा अन्य लोग भी अपनी–अपनी स्थिति से जाने जाते हैं। एक ही नाम के दो प्रसिद्ध लोगों के बारे में बात होने पर यह बताना पड़ता है कि यह कौन व्यक्ति है। शासक है अथवा अभिनेता है जिसका उल्लेख हो रहा है। इस प्रकार जगत में प्रत्येक मनुष्य की स्थिति होती है। परन्तु माता के गर्भ में रह रहे ,पल रहे जीव के बारे में उसकी पूर्व स्थिति का आंकलन नहीं किया जा सकता है कि वह माता के गर्भ में आने के पूर्व में किस स्थिति में था? यह भी एक संशय है, रहस्य है। जिसके बारे विनिश्चय नहीं हो सकता है। इस कारण भी हमें परमात्मा की सत्ता और उसके अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

(घ) जीव को माता के गर्भ में किसने भेजा है?— जीव को माता के गर्भ में किसने प्रेषित किया है? इस बारे में भी नहीं जाना जा सकता है। माता के गर्भ में जीव के आने के पश्चात् उसमें हलचल आरम्भ हो जाती है। जीव गति करता है तो ज्ञात हो जाता है परन्तु यह जीव किसने भेजा है? यह रहस्यप्रद तथ्य है। कोई भी मनुष्य, शक्ति, वैज्ञानिक, विधि इस तथ्य को स्पष्ट नहीं बता पायेगी कि जीव माता के गर्भ में कहाँ से आया? जीव का आना स्पष्ट करता है कि वह अवश्य ही किसी के द्वारा भेजा गया है? जैसे नदियों में बाढ़ आ जाती है तो यह अनुमान लगाया जाता है कि यह बाढ़ का जल कहीं से आया है? जहाँ से आया है यदि वह वहाँ न होता तो वह किस प्रकार आता है? किसी ने इस जल को अवश्य भेजा है? बरसात ने एकत्र होकर इस जल को यहाँ भेजा है। जैसे कोई पत्र आता है तो यह निश्चित है कि वह पत्र किसी के द्वारा अवश्य ही प्रेषित किया गया होगा यदि वह प्रेषित नहीं किया जाता, किसी के द्वारा नहीं भेजा जाता तो हमें कैसे प्राप्त होता? इस प्रकार जीवात्मा को भी किसी ने माता के गर्भ में भेजा है यह किसने भेजा है? यह संशय है, रहस्य है। इस कारण हमें परमात्मा की सत्ता और अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

(ड) माता के गर्भ के पूर्व किस लोक में वास था— माता के गर्भ में आने से पूर्व जीव किस लोक में वास कर रहा था? यह रहस्यप्रद तथ्य है। यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। जैसे कोई मनुष्य किसी दूसरे देश में, प्रदेश में ,शहर में रहता है और पश्चात् में वहाँ से छोड़कर अन्य देश, प्रदेश, शहर में बसता है तो यह ज्ञात रहता है कि अमुक मनुष्य इससे पहले अमुक देश, प्रदेश में रह रहा था, वहाँ से छोड़कर यहाँ आकर बस गया है। कोई भी मनुष्य किसी दूसरे देश, प्रदेश, राज्य में रहने आया है तो वह पहले कहीं अवश्य रहता होगा । यदि वह था नहीं रहता नहीं तो कहाँ से आता? तो यह तथ्य निश्चित है कि यदि कोई मनुष्य किसी स्थान में आकर रहा है तो वह इससे पूर्व भी कहीं था? अवश्य था। वैसे ही जीवात्मा माता के गर्भ में आयी है तो वह किसी लोक में अवश्य थी। किसी लोक में अवश्य ही रह रही थी। यदि नहीं रह रही होती तो वह वहाँ से इस पृथ्वी लोक में कहाँ से आती? पृथ्वी लोक में आने से पूर्व किस लोक में वास था ?इस बारे में नहीं जाना जा सकता है। इस कारण यह रहस्य तथा संशय का विषय है। जीवात्मा माता के गर्भ में आने से पूर्व किस लोक में वास कर रहा था ?इसे न जान पाने के कारण ही हमें परमात्मा की सत्ता और अस्तित्त्व को

स्वीकार करना पड़ता है। माता के गर्भ में आया है तो अवश्य किसी लोक में रह रहा था, परन्तु किस लोक में रह रहा था? यह निश्चित नहीं है।

(च) जीव माता के गर्भ में कैसे आ गया?– माता के गर्भ में जीव कैसे आ गया? यह भी नहीं जाना जा सकता है। माता के गर्भ में जीव पहले नहीं था और वह आ गया इसका अर्थ है कि वह अवश्य आया। जैसे एक कमरे में कोई व्यक्ति न हो और कमरे में व्यक्ति आ जावे तो यह निश्चित है कि मनुष्य कहीं से आया? यह ज्ञात न हो कि कैसे आया ? तो यह रहस्य रहेगा तथा संशय भी उत्पन्न हो जायेगा। माता के गर्भ में जीव नहीं था और आ गया तो यह आने की प्रक्रिया अवश्य हुयी, परन्तु अभी तक यह तथ्य नहीं जाना जा सका कि माता के गर्भ में जीव कैसे आ गया ?माता के गर्भ में जीव के आने की प्रक्रिया क्या है? यह रहस्य है।

इन कारणों से हमें परमात्मा की सत्ता और उसके अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार मानव के प्रकटीकरण का माता के गर्भ में जीव के आने का तथ्य रहस्यपूर्ण है। जीव कहाँ से आया ?जीव के माता के गर्भ में आने के पूर्व में वह क्या था? उस जीव की क्या स्थिति थी? माता के गर्भ में जीव को किसने भेजा? माता के गर्भ में आने के पहले वह कहाँ वास कर रहा था? और वह अचानक कैसे प्रगट हो गया ?यह सब तथ्य रहस्यमय है। मनुष्य की बुद्धि इस सम्बन्ध कोई जानकारी नहीं रखती। मनुष्य को अपने उद्‌भव के बारे में अर्थात् अपनी उत्पत्ति के कारण के बारे में कोई निश्चित ज्ञान नहीं है इस कारण वह सर्वथा अज्ञानी है। जिन तथ्यों को उपरोक्त प्रकार से उल्लिखित किया गया है वे सबके सब तथ्य संशय ही उत्पन्न करते हैं। जिनसे प्रत्यक्ष रूप से निवृत नहीं हुआ जा सकता है। हमारे पास आज तक कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिससे हम इन उपर्युक्त तथ्यों के बारे में जान सके तथा उपरोक्त प्रश्नों का हल कर सके। मानव जब अपने प्रकटीकरण के सम्बन्ध में सम्यक् विनिश्चय नहीं कर सकता है, नहीं कर पाता है तो इसे संशय की स्थिति ही कहा जावेगा। इस संशय का निवारण भी आवश्यक है। इस संशय का निवारण कैसे होगा यह जानना भी आवश्यक है।

(3) मानव का समापन :– माता के गर्भ से मनुष्य का जीवन आरम्भ होता है और वह जन्म लेकर इस संसार में प्रकट हो जाता है। शिशु अवस्था, बाल्यावस्था,

किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था तथा वृद्धावस्था को धीरे–धीरे प्राप्त करता है तथा मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मृत्यु के पश्चात उसका अस्तित्त्व समाप्त हो जाता है और वह मृत्यु के पश्चात् प्रतीत नहीं होता है। जो हमारे साथ कल थे और हमारे अतिनिकट थे वे मृत्यु के पश्चात् अचानक ही गायब हो जाते हैं। अचानक ही उनका शरीर लुप्त हो जाता है। हम कुछ भी प्रयास करें, कितना भी यत्न करें परन्तु वह हमें प्राप्त नहीं होते हैं मिलते नहीं हैं तथा प्रतीत नहीं होते हैं। यह रहस्यप्रद स्थिति है और इस पर हमें विचार करना पड़ता है?क्योकि यह भी विचारणीय है। जीवन के पश्चात क्या होता है? और हम क्या इसे नहीं जान सकते हैं? इस पर विचार प्रस्तुत किये जा रहे हैं –

(क) किसके आदेश से यह जीवन समाप्त होता हैः– मनुष्य शिशु से वृद्ध हो जाता है और वह अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होकर समाप्त हो जाता है। यह सब किसके आदेश से होता है? शिशु के रूप में जो शरीर होता है वह धीरे–धीरे वृद्ध के रूप में कैसे परिवर्तित हो जाता है? यह तथ्य विचारणीय है। जो जीव माता के गर्भ में मानव शरीर में प्रविष्ट हुआ था वह वृद्धावस्था में अचानक शरीर से निकल जाता है। हम यदि प्रयास करें कोई भी प्रयत्न करें परन्तु वह इस जीव के शरीर से पलायन की क्रिया को रोक नहीं सकता है। जीव अन्ततः इस मानव शरीर से अवश्य ही विलग हो जायेगा। उसे कोई रोक नहीं सकता है।

मानव शरीर से जीव का पलायन तथा इस पलायन को रोक नहीं पाना स्पष्ट करता है कि कोई शक्ति मानव से भी अधिक शक्तिशाली है जो इस मानव शरीर से जीव को निकाल लेती है तथा हमारे प्रयास करने पर भी हम इस क्रिया को रोक नहीं पाते है। साधारणतया इस क्रिया को मृत्यु कहा जाता है। यह मृत्यु की क्रिया किसी शक्तिशाली सत्ता के आदेश से होती है। संचालित रहती है उसे ही हम सब परमात्मा कहते हैं तथा उसके अस्तित्त्व को मानते हैं। मृत्यु के कारण ही हम उसे मानने को बाध्य हैं। यदि हम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेते तो सम्भवतः परमात्मा के अस्तित्त्व को सहजता से नकार देते। इस प्रकार जीवन का समापन परमात्मा के आदेश से ही होता है।

(ख) मृत्यु के पश्चात जीव कहाँ जाता है ?– मृत्यु को रोका नहीं जा सकता, टालना भी संभव नहीं है। मृत्यु अवश्य ही आती है। मानव शरीर में स्थित जीव शरीर

का परित्याग कर देता है तब उसे मृत्यु कहा जाता है। मृत्यु कटु सत्य है। प्रत्येक मनुष्य जो भी उत्पन्न हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है। मृत्यु एक न एक दिन अवश्य ही आयेगी। जब जीव शरीर से बाहर निकलता है तो वह कहाँ जाता है? इस सम्बन्ध में हमारे पास कोई निश्चित जानकारी नहीं है कि जीव मृत्यु के पश्चात कहाँ जाता है? यहाँ पर प्रसंग वश एक तथ्य स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो जीव शरीर से बाहर जाता है अथवा परमात्मा की कोई शक्ति उसे बाहर निकालती है? यह भी विशिष्ट तथ्य है कि शरीर से जीव के निकलते ही कोई शक्ति उसे अपने अधिकार में कब्जे में ले लेती है। वह शक्ति इस जीव को लेकर कहाँ जाती है? यह भी निश्चित नहीं है। इस सम्बन्ध में हमारे पास कोई जानकारी नहीं है कि जीव कहाँ जाता है? कोई भी वैज्ञानिक उपाय इस सम्बन्ध में जानकारी देने में अक्षम है। शरीर से मृत्यु के समय जीव जाता अवश्य है, पर कहाँ जाता है ?यह निश्चित नहीं है। मनुष्य की जानकारी के सम्बन्ध में कोई साक्ष्य भी नहीं है, इस कारण इस बारे में संशय रहता है और हमें परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

(ग) मृत्यु के पश्चात जीव की क्या स्थिति होती है ?

जीव शरीर से निकलता है अथवा निकाला जाता है, परन्तु यह निश्चित है कि उसे शरीर से बाहर अवश्य किया जाता है। शरीर रूपी घर से जब जीव बाहर निकलता है तो उसकी क्या स्थिति होती है? यह भी निश्चित रूपेण कोई नहीं जान सकता । यह स्थूल शरीर यहाँ पर रह जाता है। स्थूल शरीर को हम देखते हैं और उसकी स्थिति का आंकलन कर लेते हैं। जो शरीर कुछ पलों के पूर्व चेतन था वह जड़ हो गया । जो कुछ पलों के पूर्व चेष्टा कर रहा था वह चेष्टाविहीन हो जाता है। जिस शरीर में श्वास–प्रश्वांस निकलती थी वह गतिविहीन हो गया है। स्थूल शरीर की स्थिति का अवलोकन तो हम करते हैं परन्तु जो शरीर है उसमें जीव नहीं है। इस सम्बन्ध में हमारे पास कोई जानकारी नहीं है। हम नहीं जान सकते हैं कि शरीर से निकले, निकाले गये जीव की क्या स्थिति हैं?जब जीव की स्थिति स्पष्ट नहीं होती है तो इस संदर्भ में संशय रहता है। इस संशय को समाप्त करने के लिये अर्थात् जानने के लिये जीव की क्या स्थिति है ?हमारे पास कोई साधन नहीं है। हमारे वैज्ञानिक भी इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट नहीं कह सकते है कि जो शरीर से जीव निकल गया है उसकी क्या स्थिति है।

(घ) मृत्यु के पश्चात जीव किस लोक में जाता है? – मनुष्य जब तक पृथ्वी लोक में रहता है तब तक जीवात्मा भी उस शरीर में पृथ्वीलोक में रहती है। शरीर से जीवात्मा जब पृथक् होती है तब वह किस लोक में जाती है यह निश्चित नहीं है। हम यह भी नहीं कह सकते है कि मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा किस लोक में चली गयी? पृथ्वीलोक के अतिरिक्त भी लोक हैं जिसमें जीवात्मा के निवास की व्यवस्था है। यदि नहीं होती तो जीवात्मा कहाँ रहती इसका अर्थ है कि जीवात्मा इस पृथ्वीलोक से जाती है तो अवश्य ही किसी लोक में निवास करती है। यदि ऐसा है तो वह पुनः पृथ्वीलोक में ही स्वतः वापस आ जाती इसलिये जीवात्मा का यहाँ से जाना और किसी लोक में जाकर वहाँ रहना यह स्पष्ट करता है कि उसका वहीं पर निवास है। मनुष्य किसी भी प्रकार से यह निश्चितरूपेण नहीं बता सकता कि जीवात्मा इस लोक को छोड़कर कहाँ चली गयी? और किस लोक में वास कर रही है?कोई भी वैज्ञानिक इस सम्बन्ध में कुछ भी स्पष्ट नहीं कर सकता कि जीवात्मा पृथ्वीलोक से जाने के उपरान्त किस लोक में रहती है?

(ड) मृत्यु के पश्चात जीवात्मा किस रूप में परिवर्तित होती है?:– मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा किस रूप में रहती है? यह भी निश्चय नहीं किया जा सकता है। शरीर में रहकर जीव का प्रमुख कार्य चेतनता प्रदान करना होता है। जीव ही शरीर को चेतन रखता है। हमारे प्रत्येक अंग में जो गति है, जो चेष्टा है वह जीव के कारण ही है। इस कारण शरीर की चेष्टा व गति इसके समापन से स्वतः ही समाप्त हो जाती है। यह सब होते हुये ही भी जीव का स्वरूप मृत्यु के पश्चात क्या हो जाता है? यह भी निश्चित नहीं किया जा सकता है। हम किसी भी विधि से यह ज्ञात नहीं कर सकते है कि मृत्यु के उपरान्त जीवात्मा किस रूप में परिवर्तित हो जाती है? किसी भी वैज्ञानिक विधि से यह नहीं जाना जा सकता है। इस कारण इस विषय में भी संशय रहता है तथा हमें परमात्मा की सत्ता और उसके अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

(च) जीव की गति को नहीं जाना जा सकताः– मनुष्य जब संसार में रहता है तब उसकी स्थिति स्पष्ट रहती है। वह किस वर्ण, आश्रम में रह रहा है तथा किस प्रदेश तथा देश में निवास कर रहा है? उसकी आर्थिक स्थिति क्या है? वह सुखी है? अथवा दुःखी है। यह सबका सब स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है। हम सभी उसका आभास करते

हैं । मनुष्य यदि आर्थिक रूप से सम्पन्न है तो भी उसका आभास होता है। आर्थिक रूप से सम्पन्न मनुष्यों को संसारिक सुखों का आभास रहता है, क्योंकि उनके पास सुविधायें है। आर्थिक रूप से विपन्न हैं तो उन्हें दुःखों का आभास रहता है क्योंकि वे सांसारिक सुविधाओं से वंचित हैं।

मनुष्य जब शारीरिक रूप से स्वस्थ रहता है तो भी वह प्रसन्न रहता है। रूग्ण मनुष्य दुःखी रहता है। यह सब संसार में शरीर की स्थिति को स्पष्ट करते हैं। जीव शरीर छोड़ता है तो वह प्रसन्न रहता है अथवा दुःखी रहता है, उसकी क्या स्थिति रहती है? यह नहीं जाना जा सकता है। जीव शरीर में जैसा अनुभव करता है क्या वैसा ही अनुभव शरीर छोड़ने के उपरान्त करता है ?अथवा वह प्रसन्न रहता है या दुःख का आभास करके दुःखी रहता है। इस तथ्य को किसी भी प्रकार नहीं जाना जा सकता है। इस प्रकार जीव की गति के बारे में भी संशय रहता है। इस संशय का निवारण भी किसी वैज्ञानिक विधि से संभव नहीं है।

(छ) जीवात्मा किस योनि में जायेगी ये भी नहीं जाना जा सकता? –

जीवात्मा मृत्यु के पूर्व मनुष्य योनि में थी वह हमारे शरीर के माध्यम से प्रतीत हो रही थी। उसका प्रकटीकरण ही यह मानव शरीर है। संसार में अन्य योनियां हैं। कीट, पशु, पक्षी, जलचर, नभचर आदि योनियां है। संसार में विभिन्न प्रकार के कीट, पशु, पक्षी, हम देखते हैं तथा उनके शरीर का दर्शन करते है। जितने भी पशु पक्षी कीड़े आदि हैं उनके पृथक् पृथक् शरीर हैं किसी का शरीर एक प्रकार का नहीं है। यह शारीरिक विषमता हमें स्पष्ट प्रतीत होती है। हम उन्हें देखकर यह जान सकते हैं कि अमुक पशु कौन है? अमुक पक्षी कौन है ? अमुक कीड़ा कौन है ?अमुक जीव नभचर है अथवा जलचर है।

मनुष्य की जीवात्मा क्या इन हजारों प्रकार के जीवों में परिवर्तित होती है? यह भी नहीं कहा जा सकता है। मनुष्य की जीवात्मा क्या पशु पक्षी कीट आदि में जाती है? अथवा मनुष्य की जीवात्मा मनुष्य में ही जाती है यह नहीं जाना जा सकता है। इस कारण इस बारे में भी संशय रहता है। यह संशय किसी प्रकार निवारित नहीं किया जा सकता है। हमारे पास कोई विधि नहीं है कि मनुष्य की जीवात्मा किस योनि में जायेगी? यह जाना जा सके। इस कारण ही हमें परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

जीवात्मा माता के गर्भ में कैसे प्रविष्ट हो गयी? किसने प्रविष्ट कर दी? यह निश्चित रूप से नहीं जाना जा सकता है। जीवात्मा की माता के गर्भ में प्रवेश से पूर्व क्या स्थिति थी? किसने उसे माता के गर्भ में प्रवेश कराया ? यह संशय रहता है। मनुष्य की मृत्यु होती है जीवात्मा जो माता के गर्भ से अब तक थी वह उस शरीर को छोड़कर चली जाती है। यह जीव के आने तथा शरीर छोड़ने की प्रक्रिया में संशय है। अर्थात् हम इस बारे में कुछ भी नहीं कहने की स्थिति में है और न ही हमारे पास इस सम्बन्ध में कोई साक्ष्य ही है कि हम जीवात्मा के बारे स्थिति स्पष्ट कर सके। जीवात्मा के बारे संशय का रहना, स्थिति का स्पष्ट न होना यह सिद्ध करता है कि परमात्मा की सत्ता है और उसका निश्चित अस्तित्त्व है, जो जीवात्मा को माता के गर्भ में प्रविष्ट कराता है और निश्चित समय तक शरीर में रखकर उसे निश्चित समय के पश्चात् शरीर से बाहर निकाल देता है।

जीवात्मा के बारे में जो भी संशय है उसका निवारण हमें संसार में प्राप्त नही हो सकता। इस कारण हमें शास्त्रों की ओर देखना पड़ता है। परमात्मा के अस्तित्त्व पर भी विश्वास करना पड़ता है। शास्त्रों में उक्त संशयों के बारे में जो निवारण प्रस्तुत किया गया है वह हमें मानना पड़ता है। ऐसी हमारी बाध्यता है। हमारे पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प भी नहीं है। जीवात्मा के बारे में उसकी स्थिति के बारे में हम विचार कर सकें और जान सके। जो तथ्य हमारे समक्ष प्रत्यक्ष नही होते हैं हमारी अनुभूति में नहीं आ सकते है। वहां पर शास्त्रों में विश्वास की मान्यता प्राप्त होती है और वह मान्यतायें हमे माननी ही पड़ती हैं। यह मान्यतायें किस सीमा तक सही हैं? वह जहाँ तक सम्भव है वहां तक तर्क तथा प्रमाण के सहारे हमें मानने का प्रयास करना चाहिए। परमात्मा के अस्तित्त्व की स्वीकारोक्ति भी हमें इसी कारण करनी पड़ती है क्योंकि हम जन्म के पूर्व भी अप्रकट थे और मृत्यु के पश्चात भी अप्रकट हो जायेंगे। हम निश्चित अप्रकट हो जायेंगे हम अपने को संसार में एक सीमा तक ही रोक पाते हैं इस कारण भी हमें परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करना पड़ता है।

(4) मानव मध्य में प्रकट रहता है:–

मनुष्य जब जन्म लेता है तो शिशु के रूप में प्रकट हो जाता है तथा वृद्धावस्था में मृत्यु के काल तक प्रकट रहता है। इस प्रकार जन्म से पूर्व भी अप्रकट था तथा मृत्यु

के उपरान्त भी अप्रकट हो जाता है। जीवनकाल में ही प्रकट होता है। मनुष्य को प्रकट करने में और उसे अप्रकट करने में कहीं कोई शक्ति निश्चित रूप से कार्य करती है। वह शक्ति और सत्ता तो प्रकट नहीं होती है परन्तु अप्रकट होकर भी अप्रत्यक्ष रहकर भी प्रत्यक्ष की तरह भी कार्य करती है। मनुष्य को जन्म के साथ प्रकट करना और धीरे–धीरे उसके शरीर को विकृत करना तथा अन्ततः उसे समाप्त कर देना, यह विस्मयकारी कार्य कौन कर रहा है? जन्म से पूर्व मनुष्य को वह शक्ति कहां रखती है? और मृत्यु के पश्चात उसे कहां ले जाती है ?यह तथ्य हम नहीं जानते है। यह कितना रहस्यप्रद तथ्य है। हमारे इस जगत में प्रकट होने का एक समय निश्चित है और उतने समय तक ही हमें प्रकट होने का अवसर प्राप्त होता है।

मानव अपने जीवन काल में ही प्रकट होता है। परमात्मा उसे प्रकट करता है। शेष समय अप्रकट रहता है। परमात्मा जब हमें प्रकट करता है तो उस काल को साधारण रूप से जीवन कहा जाता है। परमात्मा हमें जीवन क्यों देता है? वह प्रकट क्यों करता है? पृथक् पृथक् मनुष्यों को वह जीवित क्यों रखता है? संसार में जितने जीव है उनका जीवन काल पृथक् पृथक् है। एक नहीं है। कोई 100 वर्षों तक जीता है और कोई 40 वर्षों तक और कोई 60 वर्षों तक जीवित रहता है। यह पृथक् पृथक् जीवनकाल परमात्मा क्यों देता है? उसका क्या उद्देश्य है? हम जैसे घर में कोई नौकर रखते है तो कभी एक समय तक रखते है और कभी 10 साल तक और कभी मात्र दो माह तक। यह हमारी इच्छा पर रहता है कि हम अपनी आवश्यकतानुसार नौकर की सेवायें प्राप्त करें। आजकल कई प्रख्यात संस्थान अपने कर्मचारियों से सेवाकाल के अनुबन्ध करा लेती है। परमात्मा भी हमें एक विशिष्ट कार्य के लिये इस पृथ्वी पर प्रकट करता है और उस समय के उपरान्त वह हमें वापस बुला लेता है। वह हमारा स्वामी है और हम उसके सेवक है। हमारी सेवायें उसे लेने का अधिकार है। उस सेवा के लिये ही वह हमें प्रकट करता है।

(5) मानव के उद्भव, स्थिति, समापन पर नियंत्रण :–

मानव का उद्भव माता के गर्भ में होता है। यह उद्भव परमात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि करता है। माता के गर्भ में जीव का प्रकटीकरण होता है। आश्चर्यजनक रूप से जीव माता के गर्भ में आ जाता है। माता के गर्भ में जीव का प्रवेश होना एक

आश्चर्यजनक घटना है। जिसे हम जान नहीं पाते है। कैसे जीव समय से माता के गर्भ में आ जाता है? तथा गर्भ में पल रहे शरीर को चेतन कर देता है। यह उस परमात्मा के अस्तित्त्व तथा उसके विलक्षण कार्य की ओर संकेत करती है। जैसे कोई जादूगर सबके सामने ही कोई वस्तु प्रकट कर देता है। उस परमात्मा की विलक्षण शक्ति से माता के गर्भ में जीव का प्रकटीकरण होता है। समस्त मनुष्यों का उद्‌भव भी उसी प्रकार हुआ है। यह विचित्र घटना है जिसका क्रियान्वयन किया गया है। हम इसी क्रियान्वयन के परिणाम में प्रकट हुये है।

इस प्रकार इस जगत पर परमात्मा का नियंत्रण है। वह परमात्मा ही इस जगत को प्रकट करता है। हमें उत्पन्न करता है।

मनुष्य जब उत्पन्न हो जाता है तब शिशु अवस्था में रहता है। उसे संसार से आहार प्राप्त होता है। वह आहार भी परमात्मा के आदेश से ही उत्पन्न होता है। वह आहार ग्रहण करता है और धीरे–धीरे वृद्धि को प्राप्त होता है। उसकी वृद्धि बाल्यावस्था तथा युवावस्था तक होती जाती है। एक छोटा शिशु रूप विशाल रूप में प्रकट हो जाता है। परिवर्तित हो जाता है। यह आकार का परिवर्तन ऐसे ही नहीं होता है उस पर परमात्मा का पूर्ण नियंत्रण रहता है। वह शरीर के आकार का, प्रकार का स्थिति का परिवर्तन करता है। परमात्मा की रचनात्मक शक्ति प्रकृति निरन्तर गतिशील रहती है और वह परिवर्तन कराती है। इस पर परमात्मा का पूर्ण नियंत्रण रहता है। इस प्रकार मनुष्य की उत्पत्ति के उपरान्त उस पर स्थिति का नियंत्रण परमात्मा का है। वह परमात्मा उत्पत्ति भी करता है तथा मनुष्य की जगत में स्थिति बनाये रखता है।

युवावस्था के पश्चात यह मानव शरीर वृद्धावस्था की ओर शनैःशनैः उन्मुख होता है। उसमें विकृति आती जाती है। कितना भी प्रयास करने पर, पौष्टिक खाद्य समाग्री, औषधियां ग्रहण कर लेने पर भी शरीर की यह विकृति रोकी नहीं जा सकती है क्योंकि यह शरीर परिवर्तनशील है। विनिष्ट होना ही उसका स्वभाव है इस कारण विकारी है। युवावस्था का सुन्दर शरीर स्वतः ही हड्डियों मे परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन को रोका नहीं जा सकता है। वृद्धावस्था आने पर इसका समापन हो जाता है। वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

युवावस्था के सुन्दर शरीर को वृद्धावस्था में किसने परिवर्तित किया है?कौन है जो इस परिवर्तन को कर रहा है? कौन है जो शरीर को विनिष्ट कर रहा है? जो शरीर अप्रकट था वह प्रकट होकर पुनः अप्रकट हो रहा है। वह निश्चित ही परमात्मा है जिसने इस परिवर्तन की पूर्ण व्यवस्था कर रखी है। उसके आदेश से ही यह शरीर समाप्त हो जाता है। परमात्मा का ही मानव के प्रकटीकरण, उसकी स्थिति तथा समापन पर पूर्ण नियंत्रण है यह तथ्य हमें संशयरहित होकर स्वीकार करना पड़ता है। हम इस तथ्य को मानने हेतु बाध्य हैं उस परमात्मा के नियंत्रण से ही जगत की समस्त गतिविधियां चल रही है। हम प्रकट होते है तो उसके नियंत्रण में प्रकट होते हैं। रहते है। बढ़ते हैं। अवस्थायें परिवर्तित होती हैं यह सबका सब परमात्मा के नियंत्रण में ही चलता है। वह अप्रकट अव्यक्त परमात्मा हमें प्रकट करता है और स्वयं अप्रकट रहता है। इस प्रकार परमात्मा हम पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित किये हुये है।

(6) मानव के उद्भव, स्थिति, समापन पर संशय :–

मानव का उद्भव होता है, स्थिति रहती है और समापन भी हो जाता है इस बारे में मन में अनेक संशय रहते है जिनका निवारण हम स्वतः नहीं कर सकते हैं मानव के उद्भव, स्थिति तथा समापन में क्या संशय है इसका अवलोकन कीजिये–

1. जीव माता के गर्भ में आता है परन्तु कहां से आता है? इसका संशय रहता है। क्या कोई ऐसा स्थान है जहां से यह जीव माता के गर्भ में आ जाता है?
2. जीव माता के गर्भ में आता है परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि जीव इससे पूर्व क्या था? यह भी संशय रहता है।
3. माता के गर्भ में आने के पूर्व जीव किस स्थिति में था? यह जानकारी न होने के कारण जीव की पूर्व स्थिति का संशय रहता है।
4. माता के गर्भ में जीव किसने भेजा है यह स्पष्ट नहीं है? इस कारण इस विषय में भी संशय रहता है।
5. क्या कोई ऐसा लोक है? जिसमें माता के गर्भ में आने से पूर्व जीव रह रहा था हमें यह तथ्य भी ज्ञात नहीं है इस कारण यह भी संशय रहता है।
6. शिशु के रूप में जन्म लेने के पश्चात् शिशु का विकास कैसे होता है? यह भी संशय रहता है।

7. शिशु से बाल्यावस्था, युवावस्था होते हुये मनुष्य वृद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। यह परिवर्तन किस प्रकार होता है? यह भी संशय रहता है।
8. वृद्धावस्था के पश्चात यह जीवन कैसे समाप्त हो जाता है? इसके आगे क्या होता है? इस सम्बन्ध में संशय रहता है।
9. मृत्यु के उपरान्त यह जीव कहां जाता है? यह स्पष्ट नहीं है, इस कारण इस विषय में भी संशय रहता है।
10. जीव की मृत्यु के पश्चात क्या स्थिति होती है? इस बारे में भी जानकारी न होने कारण संशय रहता है।
11. जीव मृत्यु के पश्चात किस योनि में जायेगा? यह भी जानकारी न होने के कारण इस विषय में संशय रहता है।

(7) परमात्मा की दुर्लभता से उसके अस्तित्व के बारे में संशयः—

परमात्मा का अस्तित्व है अथवा नहीं है इस बारे में साधारण मनुष्यों को संशय रहता है। इस संशय का प्रमुख आधार है कि वह हमें प्रतीत नहीं होता, दिखायी नहीं पड़ता । हमारे समक्ष प्रकट नहीं होता है। प्रत्यक्ष नहीं होता है। उसका प्रकट नहीं होना, दिखायी नहीं पड़ना, प्रत्यक्ष नहीं होना, परमात्मा के अस्तित्त्व के संशय को उत्पन्न करता है। हम सभी जब किसी गंभीर संकट में होते है तब यह कहते हैं कि लगता है परमात्मा कहीं नहीं है। अथवा है और वह हमारे संकटों को, प्रतिकूल परिस्थितियों को देख नहीं रहा है। इस कथन का विचार संशय उत्पन्न करता है। परमात्मा के अस्तित्त्व के बारे में जो संशय है उसमें साधारण व्यक्ति क्या विचारशील मनुष्य भी भ्रमित हो जाते हैं। परमात्मा तो है परन्तु मनुष्य के पृथक्—पृथक् प्रकारों तथा स्थिति व विचारों के कारण दुर्लभ है। उसकी दुर्लभता ही संशय की उत्पत्ति का प्रमुख कारण। वह दुर्लभ क्यों है ? इसके कुछ कारणों का विवरण दिया जा रहा है—

एकः— बहुत से मनुष्य परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार नहीं करते है। वे नहीं मानते है कि परमात्मा भी है। यद्यपि ऐसे मनुष्यों की संख्या संसार में कम ही है। संसार के जो प्रमुख धर्म संप्रदाय हैं वे परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करते हैं तथा परमात्मा की सत्ता को मानते है। जो मनुष्य परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं

उनको परमात्मा दुर्लभ है। उनके परमात्मा के अस्तित्त्व के संशय को समाप्त नहीं किया जा सकता है। वे जीवनपर्यन्त संशयग्रस्त रहते हैं। परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार न करने के कारण उनकी बड़ी ही दुर्गति रहती है। परमात्मा के अस्तित्त्व को जब नास्तिक मनुष्य स्वीकार नहीं करता है तब वह स्वेच्छाचारी हो जाता है और मानमाने ढंग से कर्मों का आचरण करता है। शास्त्र की विधि को न मानकर मनमाना आचरण करने से ही मनुष्य की दुर्गति निश्चित है। शास्त्र से नियंत्रित मनुष्य सद्गति को प्राप्त होता है और अनियंत्रित मनुष्य दुर्गति को प्राप्त हो जाता है।

दो :— बहुत से मनुष्य परमात्मा के अस्तित्त्व में संशय रखते है परन्तु पूर्ण संशय नहीं रखते है। वे परमात्मा को मानते भी है और नहीं भी मानते है। यदि परिस्थितियां अनुकूल रहती है तो वे परमात्मा के अस्तित्त्व को स्वीकार करते रहते हैं तथा यह कहते रहते हैं कि परमात्मा की बड़ा कृपा और दया है। यह परमात्मा के अस्तित्त्व की स्वीकारोक्ति है। ऐसे मनुष्यों की प्रतिकूलतायें जब बढ़ती है तथा कष्टों से उनका सामना पड़ता है तो वे कहते है कि परमात्मा का अस्तित्त्व नहीं है यदि होता तो हमें इतना कष्ट प्राप्त नही होता ऐसे मनुष्यों के लिये भी परमात्मा दुर्लभ रहता है।

तीनः— कुछ मनुष्यों में परमात्मा के प्रति आस्था प्रबल हो जाती है। आस्था की प्रबलता के कारण वे परमात्मा का देवी देवताओं का भजन पूजन भी करते हैं। परमात्मा में उनका विश्वास रहता है परन्तु संसार में भी उनकी आस्था प्रबल रहती है। संसार के सहयोग से संसार में आस्था रखना परमात्मा के सहयोग से परमात्मा में आस्था रखना ऐसे लोगो की धारणा रहती है। ऐसे आस्थावान लोग परमात्मा के सहयोग से संसार चाहते हैं । उन्हें संसार प्राप्त भी होता है। धन, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य प्राप्त हो जाता है परन्तु संसार में आस्था करना और परमात्मा में आस्था रखना ये दो तथ्य हैं। दोनो ही प्रतिकूल हैं । संसार में आस्था का होना और परमात्मा में आस्था से कुछ समय परमात्मा के प्रति समर्पण का भाव रखना, ऐसे भी मनुष्यों हेतु भी परमात्मा दुर्लभ है।

चार :— परमात्मा उन लोगों हेतु भी दुर्लभ है जो पूरी सामर्थ्य से परमात्मा की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील नहीं होते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं। एक तो परिस्थितियां अनुकूल न हो, दूसरे उसकी प्राप्ति की क्रिया संशयग्रस्त हो। बहुत से साधक प्रयत्नशील तो होते हैं परन्तु उन्हें समुचित मार्गदर्शन न मिल पाने के कारण उन्हें परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो पाती है ऐसे लोगों के लिये भी परमात्मा दुर्लभ होता है।

पांच :– साधारणतया परमात्मा के अस्तित्त्व के बारे में संशय रहता है क्योंकि उसकी अनुभूति सहज नहीं है। उसकी अनुभूति सहज न होने के कारण ही मनुष्य का परमात्मा के विषय में संशय अवश्य रहता है। साधक जो उसकी अनुभूति हेतु प्रयत्नशील रहते हैं वे भी परमात्मा के बारे में संशय रखते हैं। साधक को साधन में जब अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं होती है तो भी साधक को अनेक प्रकार के संशयों से गुजरना पड़ता है। हमारी प्रार्थना स्वीकार हुयी अथवा नहीं यह विचार रहता है। यह संशय है कि हमें परमात्मा की प्राप्ति कैसे होगी? किस प्रकार होगी? होगी भी अथवा नहीं होगी और हम साधना की किस ऊँचाई तक पहुँच चुके है? यह सबका सब संशय समान्य रूप से साधक में रहते हैं। यह उसके अस्तित्त्व का संशय ही है। परमात्मा के अस्तित्त्व का संशय समाप्त होना ही साधन की पूर्णता कहा जाता है जब साधक पूर्ण हो जाता है तब वह परमात्मा के अस्तित्त्व की, उसके निकटता की अनुभूति करता है। अथवा ऐसा कहें कि जब साधक परमात्मा के अस्तित्त्व की अनुभूति करता है तो वह पूर्णता प्राप्त कर लेता है। परन्तु यह स्थिति सहज नहीं है। शेष सभी स्थितियों में संशय रहता है। परमात्मा के अस्तित्त्व के प्रति संशय विशेष कर उसकी दुर्लभता के कारण होते है। उसकी अप्रकटता के कारण होते है।

संसार में जब कोई वस्तु दुर्लभ रहती है, प्रतीत नहीं होती है तब उसके बारे में संशय रहता है। यह संशय प्रकट होने पर, प्रत्यक्ष होने पर समाप्त हो जाता है। वहीं स्थिति परमात्मा के बारे में है। उसकी प्रतीति न होना ही संशय का रूप है, संशय का प्रकटीकरण है। शास्त्रों के नित्य सेवन से मनुष्य इस संशय का निवारण कर लेता है। ज्ञानवान, प्रयत्नशील, विचारक, निष्ठावान साधक परमात्मा के प्रति संशय समाप्त करके पूर्ण हो जाता है। शास्त्रों के इस संशय का निवारण कैसे होता है? यह विचार का विषय है जिसका प्रस्तुतीकरण निम्न प्रकार है।

(8) शास्त्रों से संशय का निवारण :–

जीवात्मा के प्रकटीकरण तथा उसके शरीर का परित्याग तथा परमात्मा के अस्तित्त्व के सम्बन्ध में जो संशय हैं वह शास्त्रों के निरन्तर सेवन से समाप्त हो जाते हैं। मनुष्य जब अपने प्रकटीकरण के सम्बन्ध में मृत्यु के उपरान्त होने वाली गति के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता है तो वह शास्त्रों में लिखित तथ्यों को मानने के लिये

बाध्य होता है। इसके अतिरिक्त हमारे समक्ष कोई विकल्प ही नही है। वही स्थिति परमात्मा के अस्तित्त्व के संशय के बारे में है जिसका निवारण शास्त्रों के निवारण से तथा अनुभूति से होता है। परमात्मा के अस्तित्त्व का संशय तथा उसकी स्थिति के स्पष्टीकरण से संशय के निवारण का तथ्य आरम्भ किया जा रहा है। परमात्मा का निश्चित अस्तित्त्व है यह संशय मौलिक संशय है जिसके निवारण से जीवात्मा के सम्बन्ध में जो संशय है वह स्वतः समाप्त हो जाते है तथा जीवात्मा के उद्भव तथा समापन के तथ्य स्पष्ट होते है। इस कारण प्रथमतया परमात्मा के अस्तित्त्व तथा उसकी स्थिति के संशय का निवारण प्रस्तुत है।

सृष्टि रचना :– हम सब आज अस्तित्त्व में है। समग्र विश्व अस्तित्त्व में है। इससे यह सहज अनुमान होता है कि इससे पूर्व भी यह विश्व अवश्य ही अस्तित्त्व में रहा होगा। सृष्टि रचना के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का अनुमान है कि ब्रह्माण्ड के साथ सृष्टि रचना लगभग चौदह अरब वर्षों पूर्व हुयी होगी। ब्रह्माण्ड तथा सृष्टि रचना का यह आकड़ा किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता है आज हमारे पास ऐसे कोई प्रमाण नहीं है जिससे यह तथ्य सिद्ध किया जा सके कि सृष्टि रचना 14 अरब वर्ष पूर्व हुयी थी। हम अपने अस्तित्त्व को देखकर यह अनुमान लगाते हैं कि सृष्टि रचना कभी अवश्य ही हुयी होगी परन्तु कब हुयी होगी ? इसके सम्बन्ध में प्रमाण नहीं प्रस्तुत किया जा सकता है। जब ब्रह्माण्ड की रचना हुयी होगी तब सूर्य, चन्द्र, ग्रह, तारे, नक्षत्र आदि का भी निर्माण हुआ होगा। तब से आज तक सूर्य तथा चन्द्रमा की गति में सेकेण्डों का भी अन्तर नहीं आया है। वह यथावत् सम्यक्‌रूपेण चल रहा है। यहां पर दो तथ्य हैं कि ब्रह्माण्ड और सृष्टि रचना किसने की? तथा उसे आज तक सुचारू रूप से कौन चला रहा है? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि कोई शक्ति–सत्ता ही इस समग्र ब्रह्माण्ड को रचती है और सुचारू रूप से समस्त व्यवस्था का संचालन करती है। उसी शक्ति और सत्ता को हम परमात्मा कहते है। इससे परमात्मा का अस्तित्त्व भी स्पष्ट होता है तथा पूर्णरूपेण सिद्ध भी होता है।

1. **जगत की सुचारू व्यवस्था :–** संसार की समस्त व्यवस्था सुचारू रूप से चल रही है जिसे देखकर यह स्पष्ट आभास होता है कि इस व्यवस्था कोई संचालित कर रहा है। जगत के समस्त प्राणियों के लिये भोजन व्यवस्था तथा जीवन के लिये आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था कोई कर रहा है? यह व्यवस्था कभी भी छिन्न भिन्न

नहीं होती है। सुचारू रूप से चलती रहती है। यह सिद्ध करता है कि परमात्मा का अस्तित्त्व है। समस्त व्यवस्था उसी के निर्देश से चलती रहती है। जगत की व्यवस्था देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि यह वृहद् एवं विशालतम व्यवस्था कोई अप्रकट होकर संचालित कर रहा है परन्तु उसकी व्यवस्था को देखकर यह सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है कि वह अप्रकट होकर प्रकट के सदृश समग्र व्यवस्था को देख रहा है। प्रत्यक्ष तो यह प्रतीत होता है कि यह व्यवस्था मनुष्य ही चला रहा है परन्तु गम्भीरता से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि मनुष्य तो मात्र व्यवस्थापक है परन्तु मूलतः यह सम्पूर्ण व्यवस्था उसी परमात्मा के द्वारा संचालित हो रही है। एक परमात्मा के द्वारा उपलब्ध कराये गये साधनों से तथा दूसरे परमात्मा द्वारा मनुष्य को उपलब्ध करायी गयी बुद्धि से। मनुष्य की बुद्धि भी परमात्मा द्वारा ही उपलब्ध करायी गयी है जिससे वह जगत की व्यवस्था को चलाने का प्रयास करता है इससे परमात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि होती है।

3–सृष्टि के जीवों की संरचना :– सृष्टि में हम सैकड़ों हजारों प्रकार के जीवों को देखते हैं उन जीवों की रचना किसने की है? विविध प्रकार के जीवों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी शक्ति ने प्रकट होकर हजारों जीवों की रचना कर डाली जीवों की विविधता का, उनके विविध प्रकार का, पृथक् पृथक् गतिविधियों को तथा रंग रूप को देखकर उस परमात्मा का स्पष्ट आभास होता है। कीट, पशु ,पक्षी की गतिविधियां भी अलग अलग है प्रत्येक अपने अपने प्रकार से चेष्टा करता है। किसी भी जीव को देख कर यह आभास होता है कि जीव की रचना में उस परमात्मा का विशिष्ट योगदान है। रंग रूप देखकर उस परमात्मा का स्पष्ट आभास होता है। कीट, पशु, पक्षी की पृथक–पृथक प्रकार की गतिविधियॉ हैं। प्रत्येक जीव अपने–अपने प्रकार से चेष्टा करता है। किसी भी जीव को देखकर ये आभास होता है कि जीव की रचना में उस परमात्मा का विशिष्ट योगदान है और जीव की रचना की समस्त प्रक्रिया बहुत रहस्यप्रद है। कीड़े अपनी तरह से चेष्टा करते हैं। गति करते हैं। भोजन करते हैं। पशु अपनी तरह से चेष्टा, गति और भोजन करते हैं। पक्षी अपनी प्रकृति के अनुसार आकाश में उड़ान भरते हैं। ये समग्र चेष्टा ही परमात्मा के अस्तित्त्व को प्रकट करती है। परमात्मा की सत्ता को विनिश्चित करती है।

4. मनुष्य की उत्पत्ति–

ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मनुष्य सर्वश्रेष्ठ क्यों है? इस तथ्य पर गहनता से विचार करने पर ये स्पष्ट होता है कि मनुष्य की इन्द्रियॉं, मन, बुद्धि रूपी तीन विशिष्ट तत्त्व परमात्मा द्वारा विशेष रूप से मनुष्य को भेंट किये गये हैं। इन तीन तत्त्वों की मनुष्य शरीर में उपस्थिति ही मनुष्य को विशिष्ट कहने का आधार है। इन्द्रियों की संख्या दस है जिससे मनुष्य को संसार के विषयों की पृथक्–पृथक् अनुभूति होती हैं मन के सहयोग से इन्द्रियॉं विषयों का सेवन करती हैं तथा उसमें बुद्धि का विनिश्चय रूपी सहयोग भी रहता है। आज हम जो संसार में विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक अविष्कार देख रहे हैं और उनका प्रयोग कर रहे हैं वह सब के सब मानव की बुद्धि के द्वारा ही अन्वेषित किये गये हैं। इस कारण बुद्धि की विलक्षणता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मन एक ऐसा विलक्षण तत्त्व है जिससे मनुष्य अनुभव में आये हुए तथा न आये हुए भी काल्पनिक विषयों के संबंध में विचार कर लेता है। कल्पनाशील जगत में उड़ान मन के कारण ही भरना संभव हो पाता है। इस प्रकार मनुष्य जैसी विशिष्ट कृति देखकर हम परमात्मा के अस्तित्त्व और उसकी सत्ता का सहज अनुमान लगा सकते हैं तथा उसके अस्तित्त्व की पुष्टि कर सकते हैं।

5.कर्म व्यवस्था–

मनुष्य के समक्ष दो प्रकार की स्थितियॉं आती हैं। एक स्थिति अनुकूल कही जाती है और दूसरी प्रतिकूल कही जाती है। मनुष्य अनुकूल स्थितियों में प्रसन्नता का स्वतः और सहज ही आभास करता है तथा प्रतिकूल स्थितियों में वह प्रसन्न होता है। यह अनुकूलता तथा प्रतिकूलता कैसे उत्पन्न हो जाती है? यह विचारणीय विषय है। मनुष्य साधरणतया दो ही प्रकार के कर्म करता है। एक कर्म को सत्कर्म कहते हैं और दूसरे को दूषित कर्म कहा जाता है, जो शास्त्रों की व्यवस्था के प्रतिकूल होता है। इन दूषित कर्मों का जब परिणाम हमें परमात्मा की व्यवस्था के आधार पर प्राप्त होने लगता है तो हमारे समक्ष प्रतिकूलताऐं स्वतः ही प्रकट हो जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्य जब सत्कर्म करता है तो उसके समक्ष अनुकूलताओं का प्रकटीकरण स्वतः ही होता है। दूषित कर्मों के पश्चात् प्रतिकूलताओं का स्वतः प्रकट होना तथा सत्कर्मों के उपरान्त

अनुकूलताओं का भी स्वतः प्रकट होना ये परमात्मा की कर्म व्यवस्था है। ये समग्र व्यवस्था किसके द्वारा संचालित होती है, इस प्रकरण में ये तथ्य विचारणीय है। असंख्य मनुष्यों के दूषित कर्मों और सत्कर्मों का लेखा–जोखा रखना और उसके आधार पर अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों को प्रकट करना बहुत ही दुरूह कार्य है। जिसे स्पष्ट रूप से हम समझ सकते हैं ।

प्रत्येक मनुष्य के कर्मों का लेखा–जोखा सम्यक्रूपेण होता है और उसे उसका प्रतिफल भी सम्यक्रूपेण प्राप्त हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि कोई अज्ञात शक्ति इस समग्र व्यवस्था को सुचारू रूप से देख रही है और संचालित कर रही है। कर्म व्यवस्था का सुचारू रूप से चलना ही परमात्मा के अस्तित्त्व और उसकी सत्ता का हमें बोध कराता है। वह परमात्मा ही हमें हमारे कर्मों का फल में निश्चित रूप में प्रदान करता है। इस प्रकार परमात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि होती है।

6. जीवों तथा मनुष्य की जन्म और मृत्यु– समस्त जीवों की उत्पत्ति होती है अर्थात् जन्म होता है और अंततः उनका समापन हो जाता है, जिसे हम मृत्यु कहते हैं। जीवों को उत्पन्न करना तथा उन्हें समयानुसार मृत्यु की ओर ले जाना भी एक विलक्षण कार्य है, जो स्वतः और अनायास ही हो रहा है। जीव उत्पन्न होते हैं, मनुष्य उन्हें उत्पन्न नहीं करता है। जीवों की मृत्यु होती है, परन्तु मनुष्य उन्हें नहीं मारता है। ये जीवों के जन्म तथा मृत्यु की समस्त व्यवस्था परमात्मा की ओर से संचालित हो रही है। जीवों के जन्म तथा मृत्यु को देखकर सहज ही परमात्मा के अस्तित्त्व का आभास होता है। परमात्मा निश्चित है और उसका अस्तित्त्व भी निश्चित है ये तथ्य उपरोक्त आधार पर निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

मनुष्य का जन्म होता है और समय के साथ उसकी मृत्यु हो जाती है। आपने अपने जीवन में बहुत से लोगों को देखा होगा, जिनका जन्म हुआ और मृत्यु भी हो गयी। किसने जन्म दिया? और किसने मृत्यु प्रदान की? किसने उत्पन्न किया? और किसने उस उत्पत्ति को समाप्त कर दिया? ये सब विचार करने पर हमें परमात्मा के अस्तित्त्व और सत्ता का स्वतः आभास होता है। परमात्मा मनुष्य को जन्म देकर एक निश्चित आयु भी देता है। उस आयु के पश्चात् वह उसे वापस बुला लेता है। जो यह सब क्रियाऐं करता है वही परमात्मा है तथा इससे उस परमात्मा के अस्तित्व की पुष्टि होती है।

परमात्मा के अस्तित्त्व के पुष्टि हेतु उपरोक्त तथ्यों के अतिरिक्त भी अन्य आधार हैं। संक्षेप में परमात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि के मूलभूत सिद्धान्तों को उपरोक्त प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। ये प्रस्तुति विशेषकर उन लोगों के लिए है जो परमात्मा के अस्तित्त्व के संबंध में या तो संदेह रखते हैं या नकारात्मक विचार रखते हैं। परमात्मा है, निश्चित है उसका अस्तित्त्व है यह भी निश्चित है इसका हमें आभास करना चाहिए। परमात्मा के अस्तित्त्व के संशय से हमें निवृत रहना चाहिए। इस जगत में जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है वह सब का सब परमात्मा के अस्तित्त्व की पुष्टि हेतु ही है तथा पूरी तरह से परमात्मा की सत्ता की पुष्टि करता है।

9. परमात्मा एक अलौकिक एवं विलक्षण सत्ता है–

कार्य को देखकर कर्ता की स्थिति का सहज ही अनुमान लगाया जाता है। परमात्मा की अलौकिकता एवं विलक्षणता का अनुमान उसकी रचना ब्रह्माण्ड से किया जाता है। ब्रह्माण्ड में अनेक ग्रह, उपग्रह हैं। पृथ्वी भी एक ग्रह है। पृथ्वी तथा पृथ्वी से कई गुना विशाल ग्रह इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित हैं। उस विशाल ब्रह्माण्ड की रचना उस परमात्मा के द्वारा ही की गई है। पृथ्वी की विशाल रचनाओं को देखकर भी हमें परमात्मा की अलौकिकता और उसकी विलक्षणता का सहज ही अनुमान होता है। पृथ्वी पर समुद्र, वन, पर्वत–पहाड़, नदियॉ, मरूस्थल जैसी विशाल रचनाऐं उस परमात्मा के द्वारा ही की गई हैं।

पृथ्वी पर एक से एक बढ़कर विलक्षण वस्तुऐं हैं, जिसे देखकर परमात्मा की अलौकिकता का हमें अनुभव होता है। जब आप किसी पहाड़ पर जाते हैं तो वहां की रचना देखकर ये स्पष्ट होता है कि इतना विशाल निर्माण उस परमात्मा के द्वारा कैसे किया गया होगा? विशाल निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री किसी प्रकार जुटाई गई होगी? इस विशाल निर्माण में कितने लोग लगे होंगे? तथा उसे कितने दिनों में पूरा किया गया होगा? समुद्र के निकट जाने पर हमें ये स्पष्ट प्रतीत होता है कि इतनी विशाल जल राशि परमात्मा ने कहां से उत्पन्न की होगी? वह किस प्रकार से संचित की गई होगी? हम पृथ्वी पर जितना भी देखते जाएंगे उतनी ही प्रकार की विलक्षणताऐं हमारे समक्ष प्रकट होती जायेंगी। पृथ्वी अनेक प्रकार की अलौकिकताओं का विशाल संग्रह है। जहां तक हमारी दृष्टि जाती है वहां तक परमात्मा के अस्तित्त्व का हमें स्पष्ट

आभास होता है। इस सब से उस परमात्मा की सत्ता की प्रतीति तो होती है और उसकी विलक्षणता का आभास भी सहजता से हो जाता है।

पृथ्वी पर मनुष्य को उत्पन्न करके उसे भी पृथ्वी पर अनेक प्रकार की विलक्षण वस्तुओं की रचना हेतु प्रेरणा प्रदान की है। मनुष्य भी पृथ्वी पर अन्य जीवों की तरह से प्रकट हुआ है, परन्तु परमात्मा ने उसे विलक्षण बनाया है। मनुष्य को विशिष्ट बुद्धि प्रदान की है। उस बुद्धि से ही मनुष्य ने अनेक प्रकार के वैज्ञानिक उपकरण बना दिये हैं। चन्द्रमा और मंगल ग्रह तक पहुँच गया। अनेक कृत्रिम उपग्रहों की रचना करके मनुष्य ने अनेक प्रकार के विलक्षण कार्य किये हैं। इन सभी तथ्यों से परमात्मा के अस्तित्त्व तथा उसकी विलक्षण सत्ता का आभास होता है। वह परमात्मा प्रकट तो नहीं रहता पर अप्रकट रहकर भी अपनी रचनात्मक शक्ति प्रकृति के द्वारा अनेक प्रकार के विलक्षण कार्य कर डालता है। उसकी विलक्षणता इस प्रकार उसके कार्यों से सहज ही प्रकट हो जाती है। ब्रह्माण्ड का निर्माण तथा अन्य कार्य होता प्रतीत तो नहीं होता, परन्तु परमात्मा की विलक्षणता के रूप में हमें अवश्य प्रतीत होता है। यह ब्रह्माण्ड की रचना तथा पृथ्वी आदि ग्रह किसी प्रकार निर्मित हुए? इसका उल्लेख शास्त्रों में आता है। परमात्मा ने सृष्टि की रचना किस प्रकार की है? और किस प्रकार से ये व्यवस्था चल रही है? ये सब का सब तथ्य शास्त्रों में विस्तार से वर्णित किया गया है। शास्त्रों के वर्णन को हम मानने को बाध्य हैं क्योंकि उसके अतिरिक्त हमारे पास अन्य कोई विकल्प भी नहीं है।

10. परमात्मा की रचनात्मक शक्ति प्रकृति और उसके रूप–

परमात्मा अव्यक्त है, वह साधारणतया व्यक्त नहीं होता। उस अव्यक्त परमात्मा ने ब्रह्माण्ड की रचना और सृष्टि का निर्माण किस प्रकार किया ये तथ्य विचारणीय है। परमात्मा स्वयं तो कोई निर्माण नहीं करता है परन्तु इस निर्माण के कार्य को अपनी शक्ति प्रकृति के रूप में करवाता है। परमात्मा अव्यक्त है और उसकी रचनात्मक शक्ति भी इसी कारण व्यक्त नहीं है अर्थात् प्रकृति भी अव्यक्त है। वह अव्यक्त रहकर जगत और जीव के निर्माण में अपनी सक्रिय भूमिका निभाती है। उस प्रकृति ने इस सम्पूर्ण चराचर जगत को परमात्मा की अध्यक्षता एवं निर्देशन में रचा है।

परमात्मा की यह रचनात्मक शक्ति प्रकृति भी परमात्मा की तरह से विलक्षण और शक्तिशाली है। प्रकृति के रचनात्मक कार्य को देखकर ही उसकी शक्ति का

सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। प्रकृति परमात्मा के अधीन होने के कारण परमात्मा के आदेश से ही कार्य करती है और निरंतर गतिशील रहती है। जगत का समग्र परिवर्तन उसी के द्वारा होता है। विशाल ग्रह, उपग्रह के निर्माण तथा पृथ्वी और अन्य ग्रहों पर विशाल रचना को देखकर उसकी शक्ति का सहजता से अनुमान लगाया जा सकता है। प्रकृति का कार्य रूप ही हमें समग्र जगत में प्रतीत होता है। ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो प्रकृति के द्वारा निर्मित न की गई हो। परमात्मा की रचनात्मक शक्ति प्रकृति की शक्ति और स्वरूप को तथा उसके कार्यरूप को हमें समझना चाहिए।

प्रकृति के दो भेद हैं जिसे अपरा प्रकृति और परा प्रकृति कहा जाता है। अपरा प्रकृति के आठ भेद हैं तथा परा प्रकृति एक ही प्रकार की है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार ये अपरा प्रकृति के आठ भेद हैं। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश को पंचमहाभूत कहा जाता है। पृथ्वी का प्रमुख गुण गन्ध है तथा शेष चार महाभूतों के गुण रस, स्पर्श, रूप तथा शब्द हैं। पृथ्वी का प्रमुख गुण गन्ध है और इसमें शेष पंच महाभूतों के गुण रूप, रस, स्पर्श और शब्द भी सम्मिलित हैं। जल का गुण रस है। इसमें शेष तीन महाभूतों के गुण, रूप, स्पर्श तथा शब्द भी सम्मिलित हैं। अग्नि का प्रमुख गुण रूप है, इसमें शेष महाभूतों के गुण स्पर्श और शब्द भी सम्मिलित हैं। वायु का गुण स्पर्श है इसमें आकाश का गुण शब्द भी सम्मिलित है। आकाश का गुण मात्र शब्द है इसमें अन्य चार महाभूतों के गुण सम्मिलित नहीं हैं। इस प्रकार से पंच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश सृष्टि रचना के आधारभूत तत्त्व हैं, जिनसे समग्र चराचर जगत की रचना होती है। सहजता से ये तथ्य इस प्रकार कहा जा सकता है कि चाहे चर हो अथवा अचर हो समस्त प्रकार की सृष्टि में पांच तत्त्व ही आधारभूत हैं। मानव के शरीर भी इन उपरोक्त पांच तत्त्वों से मिलकर बना है। प्रत्येक जीव के निर्माण में ये पांच तत्त्व ही आधार हैं। इसके अतिरिक्त मन, बुद्धि और अहंकार को भी अपरा प्रकृति का अंग मानने के कारण ये तत्त्व भी मानव शरीर में उपस्थित रहते हैं।

शरीर में इन आठों तत्वों का मिश्रण है। इस तथ्य को सहजता से इस प्रकार समझना चाहिए कि किसी औषधि के निर्माण में यदि आठ तत्वों की आवश्यकता हो तो वनस्पतियों के ढेर से हम थोड़ी–थोड़ी मात्रा ग्रहण करके उस औषधि का निर्माण कर

लेते हैं। इसी प्रकार शरीर के निर्माण में अपरा प्रकृति के आठ तत्व मिल जाते हैं और वे मानव शरीर का निर्माण कर देते हैं। प्रकृति के दूसरे प्रकार को परा प्रकृति कहा जाता है जो जीव के स्परूप में है। जिसका वर्णन पूर्व में हो चुका है। इस सम्बंध में वर्णन निम्न प्रकार है।

11. परा प्रकृति जीव परमात्मा का अंश है–

परा प्रकृति जिसे शरीरी, देही, जीवात्मा आदि नामों से कहा जाता है। वह परमात्मा का ही अंश है। एक परमात्मा ने अपने असंख्य और अनगिनत अंश करके इस जीव रूप परा प्रकृति को असंख्य भागों को प्रकट कर दिया है। ये तथ्य उसी प्रकार है जैसे किसी विशाल पर्वत से छोटे–छोटे टुकड़े करके उसे विभिन्न उपयोगों में लिया जाये। परमात्मा ने अपने ही असंख्य भाग करके, उस अंश को जीव का नाम देकर प्रत्येक प्राणी में प्रवेश करा दिया है। मनुष्य में भी जीव का संयोग करके ही अपरा प्रकृति के द्वारा निर्मित शरीर को चेतन बनाया जाता है। ये जीवात्मा परिमाण में अत्यंत सूक्ष्म है। इसमें परिमाण का उल्लेख शास्त्रों में आता है जिससे उसकी अति सूक्ष्मता का आभास हमें होता है।

जीव बाल के अग्रभाग के दसहजारवें अंश के समतुल्य है। इतनी सूक्ष्म जीवात्मा ने इस मानव शरीर को तथा प्रत्येक प्राणी के शरीर को चेतन किया है। हाथी जैसा विशालकाय प्राणी भी इस सूक्ष्मतम् जीव के कारण ही चेतन है। जीव परमात्मा का अंश होने के कारण उसका सहधर्मी है। जैसे पहाड़ के छोटे टुकड़ो में पहाड़ के गुण रहते हैं। उसी प्रकार अति सूक्ष्म जीव में परमात्मा के गुणों का रहना स्वाभाविक है।

जीवात्मा के अनेक गुणों का शास्त्रों में उल्लेख आता है। जीवात्मा अविनाशी है क्योंकि इसका कभी भी विनाश नहीं होता और उसका विनाश करने में कोई समर्थ भी नहीं है। जीवात्मा को साधारणतया जान पाना सम्भव नहीं है। बहुत प्रयास, साधना के उच्च स्तर पर जाकर इसका आभास प्रकाश के रूप में साधक को होता है। ये मानव शरीर तो अनित्य है परन्तु इसको चेतन रखने वाली जीवात्मा नित्य है। प्रत्येक प्राणी के शरीर का जन्म होता है परन्तु जीवात्मा का जन्म नहीं होता। जीवात्मा का यह गुण विलक्षण है। इस गुण को जीवात्मा के अजन्मा गुण से कहा जाता है। जीवात्मा शाश्वत है, अर्थात् जब से सृष्टि हुई है तब से उसका अस्तित्त्व है। इसी कारण इसे पुरातन और अनादि भी कहा जाता है।

जीवात्मा को कोई शस्त्र काट नहीं सकते और अग्नि में उसे जलाने की शक्ति नहीं है, जल उसे गीला नहीं कर सकता और वायु उसे सुखा नहीं सकती है। ये जीवात्मा अचल स्थिर और सनातन है। इन गुणों के अतिरिक्त जीवात्मा शरीर में रहकर प्रतीत नहीं होती इस कारण उसे अव्यक्त कहा जाता है। मन तथा बुद्धि से उसका चिंतन नहीं हो सकता इस कारण उसे अचिंत्यरूप कहा जाता है। जीवात्मा में कोई परिवर्तन नहीं होता इस कारण जीवात्मा निर्विकार है।

परमात्मा का अंश होने से जीवात्मा विलक्षण है तथा परमात्मा की सहधर्मी है। प्राणियों के शरीर को चेतन करने में उसका आधारभूत सहयोग है। जीवात्मा शरीर में रहकर भी व्यक्त नहीं होती अर्थात् हमें प्रतीत नहीं होती। जीवात्मा का प्रभाव प्रतीत होता है। जीवात्मा शरीर में सर्वत्र रहती है और उसके प्रभाव से ही शरीर के सभी अंगों में चेतनता रहती है। शरीर के सभी अंग गति करते हैं और अपने कार्यो में बरतते हैं। माता के गर्भ में जीव का प्रकटीकरण होता है और मृत्यु काल में वही जीव शरीर का परित्याग कर देता है इस प्रकार जन्म से पूर्व माता के गर्भ में आना और मृत्यु काल में शरीर का परित्याग करना ही एक शरीर में जीवात्मा की स्थिति है। जीवाात्मा समय के साथ शरीरों में परिवर्तन करती है पर लाखों वर्षों पूर्व जैसी थी वैसी ही आज भी है। जीवात्मा इस प्रकार परमात्मा का अंश होने के कारण ही विशिष्ट है तथा चेतनता का आधारभूत तत्त्व है।

12. अपरा प्रकृति के तीन तत्त्व मन, बुद्धि और अहंकार–

पंच महाभूतों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के अतिरिक्त अपरा प्रकृति के तीन तत्त्व मन, बुद्धि, अहंकार भी प्रकृति के अंग होने के कारण अति विशिष्ट हैं और मानव शरीर में इनका विशेष स्थान और भूमिका है। इसलिए इन तीनों महत्वपूर्ण तत्त्वों के संबंध में विचार करना भी परमावश्यक है। मन, बुद्धि, अहंकार परमात्मा की प्रकृति से संबध रखते हैं इस कारण विशेष शक्ति वाले हैं। मानव शरीर में इन तीन तत्त्वों की पृथक्–पृथक क्रियाविधि है जिसे हमें समझना चाहिए। मन, बुद्धि, अहंकार के विषय में विस्तृत ज्ञान हेतु **मुक्ति का सहज उपाय** पुस्तक देखनी चाहिए।

मानव शरीर में अपरा प्रकृति का छठा तत्त्व मन एक विशिष्ट तत्त्व है। मन की वृत्ति संकल्प है। संकल्प का अर्थ है कि मन अनेक प्रकार के सांसारिक विषयों के बारे

में विचार करता रहता है। प्रातः जागने के साथ ही मन की वृत्ति अर्थात् उसका कार्य आरम्भ हो जाता है। मन की वृत्ति जागने के साथ आरम्भ होकर रात्रि सोने तक निरंतर चलती रहती है। स्वप्नावस्था में भी मन का कार्य आरम्भ रहता है। मनुष्य के जो विचारित विषय हैं वे सब के सब मन के ही कार्य रूप हैं। मन की गति बहुत तीव्र है इस कारण ही उसे प्रमथमशील और चंचल कहा जाता है। मन प्रातः से रात्रि तक हजारों विषयों के बारे में विचार कर डालता है। हम किसी भी अवस्था में रहते हैं अर्थात् चलते–फिरते, बैठते–उठते, भोजन करते विश्राम करते हुए भी अनेक प्रकार के विषयों के संबंध में विचार करते रहते हैं। ये सब का सब मन का ही कार्य रूप है। जाग्रत अवस्था में इसकी गति बहुत ही तीव्र रहती है, जिस पर विराम लगाना बहुत दुष्कर कार्य है। इसकी प्रमथनशीलता पर अभ्यास और वैराग्य से विराम लगाया जा सकता है। मन जो विचार करता है उसका विनिश्चय बुद्धि के द्वारा ही होता है। इस कारण बुद्धि की वृत्ति को विकल्प कहा जाता है। मन जो भी विचार करता है उसे बुद्धि देखती रहती है तथा उसमें अपनी सहमति और असहमति भी व्यक्त करती रहती है। बुद्धि का प्रमुख कार्य मन के द्वारा विचारित विषयों का विनिश्चय करना है। वैसे मन जो भी विचार करता है साधरणतया बुद्धि उसके बारे में अपनी सहमति ही व्यक्त करती है। कभी–कभी विषम परिस्थितियों में बुद्धि मन के द्वारा विचारित विषयों में अपनी असहमति भी दिखाती है। जब मन किसी विषय के बारे में विचार करता है तो साधरणतया बुद्धि उसकों देखती रहती है। मन के विचार पर बुद्धि जब असहमति व्यक्त करती है तो विचारों के क्रम में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। ऐसा कभी–कभी होता है।

विवेकशील पुरूष की बुद्धि निरंतर सजग रहकर मन को नियंत्रित करने का प्रयास करती रहती है। ऐसी उत्कृष्ट बुद्धि मन को अपनी इच्छानुसार चलाने की ओर अग्रसर रहती है। जब साधना से विवेक जाग्रत हो जाता है तब ऐसी स्थिति अनायास उत्पन्न हो जाती है। सामान्य मनुष्य की बुद्धि मन के अनुकूल कार्य करती रहती है और मन के साथ मिलकर चलती है। तब ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्धि की विनिश्चय की शक्ति समाप्त सी हो गयी हो। इस प्रकार बुद्धि का कार्य मन को नियंत्रित करना है। बुद्धि चूंकि अपरा प्रकृति का सातवां तत्त्व है इस कारण अत्यंत विलक्षण है।

अपरा प्रकृति का आठवां तत्त्व अहंकार है। अहंकार से मनुष्य को मैं तथा मेरे पन का आभास होता है। अहंकार ही मनुष्य को उसके अस्तित्त्व का मिथ्याबोध कराता

है। मानव शरीर में अहंकार का विलक्षण प्रभाव है, जिसके कारण उस ये बोध रहता है कि वह समाज में जो कुछ है, वह वही है। इस मिथ्याबोध के कारण ही मनुष्य संसार में फंस जाता है। हम जब अहंकार के वशीभूत होते हैं तो अनेक प्रकार के उन तथ्यों को प्रकट कर डालते हैं जो हमारे जीवन के लिए हानिप्रद हैं। साधक में अहंकार रूपी तत्व का थोड़ा सा भी अंश रहता है तब तक उसे मुक्ति की आशा नहीं करनी चाहिए। अहंकार की निवृत्ति से सुख और दुख का आभास समाप्त हो जाता है। जब तक साधक में अहंकार है तब तक वह सुख–दुख से निवृत नहीं हो पाता। अहंकार से निवृत्ति होने के पश्चात् मनुष्य की अपने स्वस्वरूप में स्थित हो जाता है। अहंकार बुद्धि से भी सूक्ष्य तत्त्व है। इस कारण साधना से हमें अहंकार के प्रभाव का अध्ययन करना चाहिए और उससे पूर्ण निवृत होने का प्रयास करना चाहिए।

13. मृत्यु के उपरान्त जीव की पांच गतियां– जीवात्मा जब मानव शरीर से बाहर निकलता है तो उस घटना को मृत्यु कहा जाता है। मृत्यु के पश्चात् कर्म के अनुसार उसकी पांच गतियॉ हैं। इन पांच गतियों का वर्णन हमें शास्त्रों में प्राप्त होता है। मानव शरीर से जीवात्मा जब बाहर निकलती है तो उस क्षण को मृत्युकाल कहा जाता है। ये मृत्यु नामक घटना अवश्य घटित होती है। जिस मनुष्य का जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। मृत्यु के पश्चात् जीव की क्या गतियॉ होती हैं? ये तथ्य विचारणीय है, इस कारण शास्त्रों के आधार पर इसका उल्लेख किया जाता है।

1. पहली गति– पृथ्वी लोक की तरह से अन्य लोक भी ब्रह्माण्ड में स्थित हैं। शास्त्रों में अतल, वितल, सुतल आदि सात नीचे के लोकों का वर्णन आता है और उसी प्रकार भु, भुवः, जनः आदि सात उर्ध्व लोकों का अर्थात् ऊपरी लोकों का वर्णन आता है। इसके अतिरिक्त यमलोक और स्वर्ग लोकों का भी वर्णन विस्तार से किया गया है। वस्तुतः ब्रह्माण्ड में लोकों के बारे में निश्चित जाना जा पाना असम्भव है। जो कुछ शास्त्रों में उल्लेख आया है वैसा ही हमें मानना पड़ता है। उसे मानने की हमारी बाध्यता है, क्योंकि जीवात्मा शरीर से जब बाहर निकलती है तो कोई अदृश्य शक्ति उसे अपने कब्जे में ले लेती है, परन्तु इस क्रिया का जाना जा पाना सम्भव नहीं है।

जीवात्मा के निकलने तथा उसके किसी अदृश्य शक्ति के ग्रहण करने की घटना को हम देख नहीं पाते हैं। उस जीवात्मा को कौन–सी अदृश्य शक्ति अपने कब्जे में ले

लेती है, ये स्पष्ट नहीं हो पाता है। मनुष्य की मृत्यु चाहें दुर्गम पहाड़ों पर हो अथवा समुद्र की गहराई में हो वहां पर भी अदृश्य शक्तियॉ उपस्थित होकर जीवात्मा को अपने कब्जे में लेने के लिए तत्पर रहती हैं। शास्त्रों में यमदूतों का वर्णन आता है जो पापी जीवात्मा को यमलोक में ले जाते हैं। इस शास्त्र उल्लिखित तथ्य के आधार पर मनुष्य की पहली गति का वर्णन किया जा रहा है। जो मनुष्य तमोगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, वह अपने दुष्कर्मों के परिणाम भुगतने हेतु यमलोक में जाता है, जहां पर उसे विविध प्रकार के भयानक यमदूतों द्वारा अनेक प्रकार की नरकीय यातनाओं को भुगतना पड़ता है। शास्त्रों में अनेक प्रकार के नरकों का उल्लेख आता है।

अनेक महानुभाव नरकों का अस्तित्त्व स्वीकार नहीं करते हैं और कहते हैं कि जो कुछ है वो सब पृथ्वी लोक पर ही है। यहां पर एक तथ्य विचारणीय है कि जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो जीवात्मा की गति और स्थिति के बारे में स्पष्ट न हो पाना ये सिद्ध करता है कि हमें मृत्यु के पश्चात् के तथ्यों के बारे में जानकारी नहीं है। इस कारण हमें शास्त्रों में उल्लिखित तथ्यों को स्वीकार करना पड़ता है। तामसी मनुष्यों को इस प्रकार अपने दुष्कर्मों का भुगतान अनेक नारकीय लोकों में यातना सहकर करना पड़ता है। ये मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की पहली गति है।

2.दूसरी गति–

कीट, पशु, पक्षी का अस्तित्त्व हमारे पृथ्वी लोक में है। विभिन्न प्रकार के कीट, पशु, पक्षियों को हम प्रतिदिन देखते हैं। ये सब परमात्मा की सृष्टि के ही अंग हैं। परमात्मा ने अपनी सृष्टि में सभी को उत्पन्न किया है। परमात्मा का अंश जीवात्मा जैसी हमारे शरीर में है वैसी ही कीट, पशु, पक्षियों आदि के शरीर में भी है। जीवात्मा मात्र शरीरों का परिवर्तन करती है। जो मनुष्य तमोगुण की प्रधानता में मृत्यु का प्राप्त होते हैं उनकी दूसरी गति कीट, पशु, पक्षियों के रूप में परिवर्तन से होती है। वे तामसी गुणों की प्रधानता से कीट, पशु, पक्षी के रूप में जन्म लेते हैं। कीड़ों को पशुओं को आपने देखा होगा उनमें कितना पराधीनता रहती है? भोजन आदि के लिए कितनी परेशानी उठानी पड़ती है। इस प्रकार तमोगुण प्रधान मनुष्यों की दूसरी गति मृत्यु के पश्चात् कीट, पशु, पक्षी आदि जीवों के रूप में जन्म लेना है।

3. तीसरी गति–

मनुष्य यदि मृत्यु काल में अर्थात् मृत्यु के समय राजसी गुणों की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह पुनः इस पृथ्वी लोक पर अपने कर्मों के अनुसार जन्म ग्रहण करता है। रजोगुण का प्रमुख कार्य मनुष्य में नाना प्रकार की सांसारिक कामनायें उत्पन्न करना है। राजसी गुणों से प्रभावित मनुष्य इस कारण सांसारिक कामनाओं में ही जीता है और मृत्यु तक उसकी सांसारिक कामनायें तृप्त नहीं होती हैं। अतृप्त कामनाओं के कारण ही उसका जन्म पुनः मनुष्य लोक में होता है। मनुष्य लोक में उसके जन्म का विनिश्चय अर्थात् परिवार आदि का निर्धारण उसके कर्मो के आधार पर होता है। जैसे बहुत से मनुष्य अपने प्रभाव और शक्ति से बहुत सा धन, सम्पदा उपार्जित कर उसका संग्रह कर लेते हैं। उस धन, सम्पत्ति को एकत्र तो कर लेते हैं परन्तु उसको अपने निजी उपयोग के अतिरिक्त समाज की सेवा, गरीबों की सहायता में खर्च नहीं करते हैं तो धन के उचित रूप से खर्च न करने के कारण उनका जन्म गरीब परिवारों में होता है। उसी प्रकार सम्पन्न मनुष्य अपनी ख्याति, प्रतिष्ठा, उपकार की दृष्टि से कुछ धन खर्च करता है तो मृत्यु के पश्चात् उसका जन्म अच्छे परिवारों में होता है। परमात्मा की कर्म व्यवस्था के अनुसार राजसी मनुष्यों का जन्म पुनः मनुष्य लोक में हो जाता है। ये कर्म व्यवस्था परमात्मा के द्वारा बनाई गई है, जो बहुत ही रहस्यप्रद है और उसका विनिश्चय परमात्मा के द्वारा निर्मित नियमों के आधार पर ही होता है।

4. चौथी गति–

शास्त्रों में अनेक प्रकार के उर्ध्व लोकों का वर्णन आता है जिसमें अनेक प्रकार के स्वर्ग लोक भी हैं। जब सात्विक गुणों की प्रधानता में मनुष्य की मृत्यु होती है तब वह स्वर्गादिक उर्ध्व लोकों में जाता है। सात्विक गुण प्रधान मनुष्य समाज सेवा में, लोगों की सहायता में, देवी–देवताओं की उपासना में, भगवान की सकाम भक्ति में अपने कर्मों का आचरण करता है और उससे पुण्यों का संचय कर लेता है। ऐसे सात्विक प्रधान मनुष्यों की मृत्यु हो जाने पर अपने पुण्यों के प्रभाव से परमात्मा की व्यवस्था के आधार पर स्वर्गादिक लोकों में पहुॅच जाते हैं। किसी मनुष्य की क्या स्थिति

है? और उसके खाते में कितना पुण्य संचित है ये सब परमात्मा की व्यवस्था में संग्रहीत रहता है। पुण्यों का स्पष्ट उल्लेख परमात्मा की व्यवस्था में किया जाता है। मृत्यु के पश्चात् सत्त्वगुण के कारण मनुष्य की चौथी गति स्वर्गादिक लोकों में जाना है। शास्त्रों में ऐसा उल्लेख आता है कि स्वर्गादिक लोकों में दुख नहीं है वहां पर तो सुख ही सुख है। मनुष्य अपने संचित पुण्यों के आधार पर स्वर्गादिक लोकों के दिव्य भोगों को भोगता है और जब उसके संचित पुण्य समाप्त हो जाते हैं तो वह पुनः पृथ्वी लोक पर आ जाता है।

5. पांचवी गति–

निष्काम योगी, परमात्मा के परमभक्त अपनी उपासना के फलस्वरूप मानव जीवन में परमात्मा का साक्षात्कार कर लेते हैं और मृत्यु के पश्चात् भगवान के परम धाम को जाते हैं। परमात्मा के परमधाम को बैकुण्ठ धाम भी कहा जाता है। इस परम पद की प्राप्ति के पश्चात् मनुष्य जन्म और मृत्यु की किया से मुक्त हो जाता है। यह स्थिति बहुत ही दुर्लभ है फिर भी प्रयास से प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है और वह दुख का संयोग न हो उसके लिए प्रयास करता है। एक दुष्कर्मी मनुष्य भी दुष्कर्मों के सम्पादन से धन, सम्पत्ति एकत्र करके सुख की कल्पना तथा अभिलाषा करता है। यद्यपि उसका ये प्रयास सफल नहीं होता है तथापि वह सुख की अभिलाषा से अनेक प्रकार के दुष्कर्मों का सम्पादन करता रहता है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य सुख की आकांक्षा से ही कर्म करता है। मनुष्य अपने जीवन में चाहे जितना धन और सम्पत्ति एकत्र कर ले फिर भी उसके उपयोग की सीमा है। समय सीमा भी है क्योंकि मृत्यु के उपरान्त उसका उपभोग नहीं किया जा सकता। परमपद अर्थात् भगवान के निवास स्थल में सुख ही सुख है और वह भी अनंत काल तक। परमधाम में परमात्मा की सान्निध्यता का आभास रहता है और वह निरंतर परमात्मा के सान्निध्य में रहता है। निष्काम कर्मयोगी तथा परमात्मा के परमभक्त उस परमपद को प्राप्त कर लेते हैं ये पांचवी गति है जो अत्यंत दुर्लभ है और कठिनता से प्राप्त होने वाली है।

14. वर्णित तथ्यों से जीवात्मा की गति के संशयों का निराकरण –

जीव माता के गर्भ में कैसे आया और कहां से आया? उसकी क्या स्थिति है? और किस लोक में उसका वास था? तथा मृत्यु के उपरान्त वह कहां जायेगा? उसकी क्या स्थिति होगी? तथा मृत्यु के पश्चात् किस लोक में जायेगा? इन समस्त तथ्यों का निराकरण उपरोक्त वर्णित तथ्यों से हो जाता है। जिस तथ्य को, तर्क से प्रत्यक्ष दर्शन से, विज्ञान से नहीं जाना जा सकता है उसे शास्त्रों के सिद्धान्तों के आधार पर जाना जा सकता है। हमारे समक्ष अन्य कोई विकल्प भी नहीं है कि हम शास्त्रों के सिद्धान्त को न माने। हमारी मृत्यु निश्चित है, और जन्म भी निश्चित है, इसमें अपना कोई हस्ताक्षेप नहीं है। इस कारण शास्त्रों के सिद्धान्त को हमें मानना पड़ता है। जहॉ हमारी पहॅुच नहीं है, जो हमारे ज्ञान तथा अनुभव की सीमा के बाहर है उन तथ्यों को हमारे शास्त्रों में वर्णित तर्को को स्वीकार ही करना पड़ता है यह हमाारी बाध्यता है। हमारी जहां पहॅुच नहीं है, जो हमारे ज्ञान तथा अनुभव की सीमा से बाहर है उन तथ्यों में हमारे शास्त्रों में वर्णित तर्कों को स्वीकार ही करना पड़ता है। यह हमारी बाध्यता है। जो तथ्य शास्त्रों में वर्णित है उन्हें हम तर्क की कसौटी पर कस सकते हैं और उसे समझ सकते हैं।

इस पृथ्वी पर जीव कहां से आया? वह पूर्व में कहां था? पशु–पक्षी आदि योनि से उनमें परिवर्तन परमात्मा की कृपा से होता है तथा नरको से पापों का क्षय होने के पश्चात् जीव मनुष्य योनि में आता है। उर्ध्वलोकों से पुण्यों के क्षय होने के पश्चात् माता के गर्भ में पुनर्जन्म हेतु जीव आ जाता है। ये जाना जा पाना असम्भव है कि जीव नरक लोक से आया है या स्वर्ग लोक से क्योकि वहां तक हमारी पहॅुच नहीं है। हमारे कर्मों के आधार पर परमात्मा की कर्म व्यवस्था के अधीन ही मनुष्य का प्रकटीकरण पृथ्वी पर होता है। ये सब मानव के प्रकटीकरण का जो संशय है उससे हमें विमुक्त करने का आधार हमारे शास्त्र ही हैं जहां से हमें इन सबका तर्कसंगत उत्तर प्राप्त होता है।

मनुष्य जन्म ग्रहण करता है तो उसकी मृत्यु भी निश्चित है। यह मृत्यु पूर्व निर्धारित होती है, परन्तु परमात्मा की कृपा से और उसके आदेश से इसमें परिवर्तन हो सकता है। जब मनुष्य जीवन समाप्त हो जाता है तो परमात्मा के आदेश से परमात्मा की कर्म व्यवस्था के आधार पर ही मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के पश्चात् मनुष्य की पॉच गतियों का उल्लेख हो चुका है और मृत्यु के पश्चात् उसकी उक्त वर्णित पॉच स्थितियॉ ही होती हैं। परमात्मा की कर्म व्यवस्था के अनुसार मनुष्य जो कर्म करता है उसी के अनुसार ही उसे लोकों की प्राप्ति होती है। शास्त्रों में

वर्णित तथ्यों के आधार पर मनुष्य जो भी कर्म करता है उसी के अनुसार उसे अग्रिम जन्म प्राप्त होता है।

जन्म के पश्चात् तथा मृत्यु के पहले मनुष्य प्रकट रहता है। मनुष्य जिस काल में प्रकट रहता है उसे ही मनुष्य की आयु कहा जाता है। जब तक मनुष्य बालक रहता है तथा उसे अकर्तव्य और कर्तव्य का बोध नहीं होता तब तक उसके द्वारा जो पाप पुण्य होते हैं उनका अंकन नहीं होता है। जब मनुष्य की बाल्यावस्था समाप्त हो जाती है और उसे शुभ और अशुभ का बोध हो जाता है तब से उसके पाप पुण्य कर्मों का लेखा–जोखा अंकित किया जाता है। महाभारत के अनुसार बाल्यावस्था की आयु चौदह वर्ष तक रहती है। जब बालक ये जान जाता है कि अमुक कार्य ठीक है अथवा नहीं ठीक है तो उसे कर्म के प्रकार का बोध हो जाता है तो वह पाप पुण्य को भुगतने का पात्र भी हो जाता है। हमारे देश में इस कारण बाल्यावस्था में ज्ञान ग्रहण करने हेतु ब्रह्मचर्य आश्रम की व्यवस्था थी तथा गुरूकुल में बालक को शास्त्रों का ज्ञान कराया जाता था। वर्तमान में व्यवस्था समाप्त हो चुकी है, जिससे समाज में अव्यवस्था आरम्भ हुई। अज्ञानता के कारण ही मनुष्य अशुभ कर्मों को शुभ मानकर करता है। उसे इस स्थिति में संशय रहता है।

इस प्रकार जीव के प्रकटीकरण तथा उसके संशयों की निवृत्ति शास्त्रों में लिखित तथ्यों के आधार पर हो जाती है। सुख तथा उर्ध्वलोकों की प्राप्ति हेतु मनुष्य को शुभ कर्मों के प्रकार को जानकर उनका सम्पादन करना चाहिए।

15. मानव जीवन की विशिष्टता–

मानव शरीर को सुरदुर्लभ कहा जाता है। अर्थात् मानव जीवन देवताओं को भी उपलब्ध नहीं है। मानव शरीर दुर्लभ क्यो है? यह बहुत ही विचारणीय प्रश्न है। मानव जीवन की ऐसी क्या विशेषतायें हैं जिनसे इसे सुरदुर्लभ कहा जाता है। क्या आपने कभी इस तथ्य पर विचार किया है? कि यह मानव जीवन सुरदुर्लभ क्यों है? ऐसे क्या तथ्य हैं? जिनसे इसकी दुर्लभता का आभास होता है। मनुष्य को परमात्मा ने ऐसी क्या वस्तु प्रदान की जिससे उसे श्रेष्ठ कहा जाता है। इस संबंध में उसे प्राप्त कुछ अधिकारों का अवलोकन कीजिए–

क– कर्माधिकार– मनुष्य को परमात्मा ने कर्म का अधिकार प्रदान किया है। मनुष्य के कर्म के अधिकार का अर्थ है कि वह कोई भी कर्म कर सकता है। परमात्मा ने मनुष्य को कर्माधिकार तो प्रदान किया है परन्तु कर्म के फल का अधिकार उसने अपने हाथ में रखा है। कर्म साधरणतया तीन

प्रकार के होते हैं जिन्हें कर्म, विकर्म, अकर्म कहा जाता है। शास्त्रसम्मत कर्मो को कर्म की संज्ञा दी जाती है। शास्त्र के प्रतिकूल कर्मों को विकर्म कहा जाता है और जब साधना की पराकाष्ठा पर जाकर मनुष्य ऐसे कर्म करता है जिनका परिणाम नहीं होता है तो ऐसे कर्मों को अकर्म कहा जाता है। किसी मनुष्य की सहायता करना कर्म कहा जाता है और ईर्ष्या, द्वेष पूर्वक उसे प्रताड़ित करने का कार्य विकर्म कहा जाता है। यदि मनुष्य समाज के हितार्थ कार्य करे और फल की आकांक्षा का परित्याग कर दे तो उसके द्वारा किये गये कर्मों को अकर्म कहा जाता है।

इस प्रकार मनुष्य कर्म, विकर्म और अकर्म करने को स्वतंत्र है परन्तु उसके परिणाम को प्राप्त करने में परतंत्र है। परमात्मा ने उसे कर्म करने का अधिकार दिया है जिसके आधार पर चाहे वह निकृष्ट बन सकता है और चाहे वह श्रेष्ठ बन सकता है। इस प्रकार मनुष्य को प्रत्येक कर्म का अधिकार है। यह अधिकार पशु–पक्षी, कीट आदि को प्राप्त नहीं है।

ख– साधनाधिकार– मनुष्य का देवी, देवताओं की पूजा–उपासना, शास्त्रों के अध्ययन रूपी स्वाध्याय, भगवान का यजन–पूजन, यज्ञादिक कर्मों के विधिवत् सम्पादन रूपी साधन का अधिकार प्राप्त है। यह अधिकार मनुष्य को परमात्मा ने प्रदान किया है। इस कारण मनुष्य श्रेष्ठ है। देवगणों पशु, पक्षी, कीट आदि को साधन का ये अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। देवी, देवताओं की उपासना मनुष्य अधिकांशतः सकाम भाव से करता है,तथा वह इस पूजन से अपनी समस्या का हल चाहता है अथवा और अधिक सम्पन्न होना चाहता है। शास्त्रों के अध्ययन रूपी स्वाध्याय से भी शास्त्र ज्ञान प्राप्त करके ज्ञान की विशिष्टता समाज में स्थापित करना चाहता है।

भगवान के यजन–पूजन साधन में अधिकांश दृष्टि अपने स्वार्थ पर ही रहती है, परन्तु मनुष्य साधन करता रहता है। यदि वह निष्काम भाव से देवी, देवताओं तथा परमात्मा का पूजन करे तो वह साधन विशेष हो जायेगा और उसे मानव जीवन के परम् पुरूषार्थ मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी। इस प्रकार मनुष्य को परमात्मा ने साधन का अधिकार प्रदान किया है, इसलिए मनुष्य श्रेष्ठ है।

ग–भोगाधिकार– मनुष्य को परमात्मा ने इन्द्रियॉ तथा मन बुद्धि प्रदान की है। उसमें ज्ञानेन्द्रियों को उनके विषयों के अनुसार विषय ग्रहण करने की योग्यता है। मनुष्य सुन्दर और मधुर संगीत का आनन्द ले सकता है। जीभ से सुस्वाद भोजन का आनन्द प्राप्त कर सकता है। नेत्रों से मनोहारी दृश्यों को देखकर आनन्दित हो सकता है। नासिका से अनेक प्रकार की सुगन्धों का ग्रहण कर

सकता है। त्वचा से कोमल स्पर्श का आनन्द ले सकता है। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों से भी यथा योग्य आनन्द प्राप्त कर सकता है। इन समस्त भोगों के ग्रहण करने में मन और बुद्धि का सहयोग रहता है। मन अकेले ही चिंतन के द्वारा सभी प्रकार के भोगों को ग्रहण कर लेता है। ये विशिष्ट भोगों को भोगने का अधिकार परमात्मा ने मनुष्य को प्रदान किया है। भोगों का अधिकार तो देवताओं को भी है इस कारण मनुष्य की तुलना देवताओं से भी की जाती है। संसार में असंख्य भोग हैं, उन सबको ग्रहण करने में इन्द्रियॉ, मन, बुद्धि ही साधन हैं जो परमात्मा के द्वारा मनुष्य को प्रदान की गई हैं। इस प्रकार असंख्य भोगों को भोगे जाने का अधिकार प्राप्त होना भी मनुष्य को श्रेष्ठ बनाता है।

घ– स्वेच्छाधिकार–

मनुष्य स्वभावतः स्वेच्छाचारी होता है और वह स्वतंत्र रूप से कार्य करना चाहता है। कोई भी मनुष्य यह नहीं चाहता है कि उसे कोई नियंत्रित करे तथा उस पर अपना अधिकार दिखाये, परन्तु ये संभव नहीं है। मनुष्य को परमात्मा ने अपने नियंत्रण में रखा है तथा साथ ही स्वेच्छाधिकार भी प्रदान किया है। वह स्वेच्छा से शुभ और अशुभ कर्मों का सम्पादन कर सकता है। इस कारण वह स्वेच्छाचारी है। ये स्वेच्छाधिकार मनुष्य को परमात्मा ने प्रदान किया है। जैसे हम किसी की भी सहायता कर सकते हैं और उसके हित करने के बारे में सोच सकते हैं। इसके प्रतिकूल हम किसी का अहित कर सकते हैं और उसे प्रताड़ित कर सकते हैं। इस प्रकार हम अपने विवेक से जैसी क्रियायें चाहें वैसा कर सकते हैं। परन्तु उन क्रियाओं का परिणाम हमें ही भुगतना पड़ता है। इस प्रकार परमात्मा ने मनुष्य को स्वेच्छा का अधिकार दिया है।

ड़– मोक्षाधिकार–

परमात्मा ने मनुष्य को मनुष्य जीवन का परमपुरूषार्थ मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार भी प्रदान किया है। ये अधिकार अन्य किसी भी योनि में प्राप्त नही है। शास्त्रों में ऐसा वर्णन आता है तथा मनीषियों का ऐसा विचार है कि मनुष्य के जीवन का एक मात्र उद्येश्य मोक्ष की प्राप्ति है। यह अधिकार मनुष्यों को ही प्राप्त है कि वह साधन करके मुक्त हो सकता है। देवगणों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि वह साधन करके मुक्त हो सकें। इस प्रकार यह विशिष्ट अधिकार प्राप्त होने के कारण ही मनुष्य श्रेष्ठ है। ये मानव जीवन की विशेषता है, उसे मोक्ष प्राप्त करने अधिकार प्राप्त है। यद्यपि मोक्ष प्राप्त करना बहुत कठिन है फिर भी सम्भव है। मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य का पुनः जन्म नहीं होता और वह भगवान के परमधाम में निवास करता है।

16. मानव जीवन का क्या उद्‌देश्य है? –

मानव जीवन के उद्‌देश्य पर विचार करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। मनुष्य जन्मता है और अंततः मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। ये जीवन तथा मृत्यु की क्रिया प्रत्येक मनुष्य के साथ रहती है। आज तक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ जिसका जन्म हुआ हो और उसकी मृत्यु न हुई हो। जिस किसी का जन्म होता है उसकी मृत्यु भी अनिवार्य है। जीवन तथा मृत्यु के बीच का जो अंतर है उसे ही जीवन कहते हैं। इसी जीवनकाल में मनुष्य कर्म करता है। विशेषतया किशोरावस्था से कार्य आरम्भ होता है और वृद्धावस्था तक चला करता है। जब तक मनुष्य की मृत्यु नहीं होती है तब तक वह क्रियाशील रहता है। किसी भी कर्म के पूर्व मनुष्य उस कर्म के सम्पादन का विनिश्चय करता है और तब उस कर्म का क्रियान्वयन करता है। बिना कर्म के विनिश्चय के कार्य नहीं होता, और ये विनिश्चय का कार्य बुद्धि ही करती है।

जब प्रत्येक कर्म के पूर्व उसका विनिश्चिय हो जाता है तब मानव जीवन के उद्‌देश्य के आधार पर ही कर्म होता है अर्थात् हम जो भी विचार करते हैं उसमें हमारे कर्म का उद्‌देश्य छिपा होता है। मानव जीवन का क्या उद्‌देश्य है यह प्रश्न और तथ्य अत्यंत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि हम उससे अपनें जीवन को उसी ओर उन्मुख करते हैं, जैसा उद्‌देश्य निर्धारित कर लेते हैं। मनुष्य जीवन पर्यन्त क्या करता है? इस प्रश्न पर विचार करने से यह ज्ञात होता है कि मनुष्य धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, पद प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है। मनुष्य जब धन, सम्पत्ति, पद प्रतिष्ठा ऐश्वर्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है तब वह उसे अपना उद्‌देश्य समझता है। बिना उद्‌देश्य के समझे तथा निर्धारित किये मनुष्य उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील नहीं होता। इस कारण यह विनिश्चय होता है कि हम उक्त वस्तुओं को जीवन का उद्‌देश्य मानकर ही कर्म करते हैं।

जीवन पर्यन्त मनुष्य कर्म करके जो भी प्राप्त कर पाता है वह मृत्यु तक ही साथ रहता है। मृत्यु के पश्चात् उसका कोई उपयोग नहीं है, अर्थात् बहुत कठिन परिश्रम से हमने यदि बहुत सा धन एकत्र कर लिया तो वह धन हमारी मृत्यु तक तो हमारे साथ रह सकता है परन्तु मृत्यु के पश्चात् उसका कोई उपयोग हमारे लिये नहीं है। वह उपार्जित धन न तो हमारे साथ जा सकता है और न ही उसका हम कोई उपयोग ही कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि हमने बहुत सी सम्पत्ति एकत्र कर

ली है तो वह सम्पत्ति भी हमारे लिए जीवन काल तक ही उपयोगी रह सकती है। मृत्यु के पश्चात् उसका कोई उपयोग सम्भव नहीं है। वैसे ही यदि हमने बहुत प्रयास करके कोई पद प्राप्त कर लिया है तो वह भी हमारी मृत्यु तक ही साथ है, उसके पश्चात् उसका प्रभाव समाप्त होने वाला है। इसी प्रकार ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, ख्याति जो भी बड़े प्रयत्न से अर्जित की जाती है वह भी मृत्यु के पूर्व ही साथ रहती है। शुभ कर्मों की प्रतिष्ठा, ख्याति मृत्यु के पश्चात् ही इस जगत में रहती है, परन्तु उससे अपना कोई पारलौकिक औचित्य नहीं हो सकता है। इस कारण धन, पद, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य ख्याति आदि भी जीवन के लक्ष्य नहीं हो सकते हैं।

मानव जब जन्म लेता है तो उसे अतीव कष्ट होता है और उस कष्ट के कारण वह बेहोशी की स्थिति में आ जाता है। उसकी स्मृति जो पूर्व जन्मों से संबंधित होती है वह विस्मृत हो जाती है। उसी प्रकार मृत्यु के समय भी मनुष्य को बहुत कष्ट होता है। ऐसा शास्त्रों में उल्लेख है। जीवन पर्यन्त जो कष्ट होता है जैसे सुख–दुख, मान–अपमान, संयोग–वियोग और असंख्य समस्यायें वे सभी कुछ हमें सहनी पड़ती हैं। यह मानव जीवन की वास्तविकता है कि हम सब कष्ट सहते हैं। जो व्यक्ति जिस स्तर का है उसके समक्ष उसी स्तर की समस्यायें हैं। लोग जीवनपर्यन्त समस्याग्रस्त रहकर कष्टों में जीवन बिताते हैं। जो मनुष्य सम्पन्न होते हैं उनकी अपने स्तर की समस्यायें होती हैं। सम्पन्न मनुष्य अधिक मानसिक अवसादों से घिरा रहता है। वह जीवनपर्यन्त संघर्ष करता है और धनपति होना चाहता है। इन समस्त कष्टों से मुक्ति का एकमात्र विकल्प मोक्ष प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्त होने पर मनुष्य को जीवन और मृत्यु के चक्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इस कारण यदि हमें उपर्युक्त कष्टों से मुक्त होना है तो हमें मोक्ष प्राप्त करने को अपने जीवन का उद्‌देश्य निर्धारित कर लेना चाहिए और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कठिन प्रयास भी करना चाहिए।

17. मुक्ति ही मानव जीवन का उद्‌देश्य क्यों है ?

मुक्ति ही मानव जीवन का उद्‌देश्य क्यों है? इस बारे में भी हमें विचार करना चाहिए। मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्त करना कोई सहज कार्य नहीं है। इसके लिए बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। जब मुक्ति की प्राप्ति की विधि को पढ़ते हैं और उसकी

प्रक्रिया को जानते हैं तो हमें यह विधि और प्रक्रिया अत्यंत सहज प्रतीत होती है परन्तु इसका क्रियान्वयन अत्यन्त कठिन और दुष्कर है। जैसे सुख–दुख, लाभ–हानि, मान–अपनमान को समान समझने से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। यह तथ्य कहने में तो बहुत ही सरल लगता है परन्तु इसका क्रियान्वयन बहुत ही कठिन है। सुख में प्रसन्न न हो और दुख में शोक का आभास न हो ये स्थिति सामान्यता प्राप्त नहीं की जा सकती है। दुख में प्रत्येक मनुष्य शोक ग्रस्त रहता है तथा सुख में प्रसन्नता की अनुभूति कर लेता है। इस कारण सुख–दुख में एक समान हो जाना कठिन ही है। इसी प्रकार लाभ हो तो प्रसन्नता की अनुभूति न हो और हानि हो तो दुख का आभास न हो यह स्थिति भी साधारण नहीं है। हमारा सम्मान हो और हमें प्रसन्नता न हो और अपमान हो तो दुख न हो ये स्थिति भी सुगमता से प्राप्त नहीं है। उपर्युक्त परिस्थितियों मे मनुष्य जब सम होने का प्रयास करता है अथवा हो जाता है तो वह विशिष्ट हो जाता है। उसका व्यवहार–आचरण पृथक् प्रतीत होता है। यह स्थिति मुक्ति की पात्रता है। इस स्थिति में समानता प्राप्त कर लेना जीवन रहते मुक्ति है क्योंकि उसे कष्ट में दुख की अनुभूति नहीं होती है।

जीवन में कष्टों का उल्लेख पूर्व में हो चुका है। इन कष्टों के तीन प्रकार हैं–

1. जन्म के समय का कष्ट
2. संसार में समस्याओं का कष्ट
3. मृत्यु के समय का भीषण कष्ट

इसके अतिरिक्त यदि मनुष्य ने अपने जीवन काल में अनैतिक कर्मों का क्रियान्वयन किया है तो उसे भयानक नरकों की प्राप्ति होती है अथवा अनेक प्रकार की मूढ़ योनियों में भ्रमण करना पड़ता है। इस प्रत्येक प्रकार के कष्टों से यदि निवृत्ति हो जाये तो उससे उचित तथ्य कोई नहीं हो सकता। मनुष्य सुख चाहता है और दुख से दूर भागता है। संयोग होने पर सुख का आभास और वियोग होने पर दुख की अनुभूति करता है। इस कारण यदि इन समस्त दुखों से मुक्ति चाहकर परमसुख की अनुभूति करना चाहते हैं तो हमें अपने मानव जीवन के उद्देश्य को मुक्ति ही मानना चाहिए और इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील ही रहना चाहिए।

भगवान की प्राप्ति हेतु उसकी सानिध्यता हेतु मनुष्य प्रयत्नशील रहता है। पूजन, भजन, पाठ, जप आदि अनेक प्रकार के कर्म करता है मनुष्य को यदि भगवान की निरंतर सानिध्यता प्राप्त हो जावे तो इससे उत्तम कोई तथ्य नहीं है। मुक्ति के उपरान्त मनुष्य परमात्मा के परमधाम में निवास करता है और वहां पर दुखों की कोई प्रतीति नहीं है तथा वहां पर शोक आदि का अभाव है। दुख शोक नाम की कोई वस्तु और स्थिति वहां पर नहीं है। वहां सुख ही सुख है और श्री भगवान का नित्य दर्शन और उनकी सानिध्यता है।

ऐसा सुख और भगवान की सानिध्यता कौन नहीं चाहेगा? यदि हमें भी ऐसा परम सुख तथा सर्व शक्तिमान भगवान की सानिध्यता चाहिए तो हमें श्री भगवान की शरण ग्रहण कर लेनी चाहिए और अपने जीवन के उद्देश्य का विनिश्चय मुक्ति ही कर लेना चाहिए। इन समस्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट है कि मनुष्य के जीवन का एकमात्र उद्देश्य मोक्ष ही है।

18. मानव ने अपने जीवन के क्या–क्या लक्ष्य स्थापित किये हैं?

वर्तमान में मानव ने अपने जीवन के क्या–क्या उद्देश्य स्थापित किये हैं? इस पर विचार करना अति आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन का उद्देश्य पृथक्–पृथक् है और वह उसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयास भी करता है। मनुष्य अपनी प्रवृत्ति के अनुसार जीवन के उद्देश्य की स्थापना कर लेता है। चूंकि मनुष्य की प्रवृत्ति का आधार गुण ही होते हैं जिनके आधार पर जीवन का उद्देश्य विनिश्चित किया जाता है। इस आधार पर मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। 1. सात्विक गुण प्रधान 2. राजसी गुण प्रधान तथा 3. तमो गुण प्रधान। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को अपनी प्रवृत्ति के अनुसार ही स्थापित किये हुए है जो गुणों के आधार पर निर्मित हो जाती है। इस प्रकार उपरोक्त तीन प्रकार के मनुष्यों के पृथक्–पृथक् उद्देश्य का अवलोकन कीजिए।

क– सात्विक गुण प्रधान मनुष्य के उद्देश्य – जिस मनुष्य में सत्त्वगुण की प्रधानता रहती है उसके जीवन के उद्देश्य भी सत्त्वगुण से प्रभावित रहते हैं। सत्त्वगुण प्रभावित मनुष्य के क्या–क्या संभावित उद्देश्य हो सकते हैं उनका संक्षिप्त अवलोकन करें।

1. देवोपासना का उद्‌देश्य – सत्त्वगुण प्रधान मनुष्य देवी–देवताओं की सकाम उपासना की ओर उन्मुख होता है। ये प्रवृत्ति सत्त्वगुण के प्रभाव से स्वतः ही उपार्जित हो जाती है। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य देवी–देवताओं की उपासना का उद्‌देश्य स्थापित कर लेता है। उसका ये विचार रहता है कि देवोपासना से सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति हो सकती है और इसी भावना के वशीभूत होकर ही वह देवोपासना को अपना बनाता है। इस विचार से देवोपासना का जो उद्‌देश्य पुष्ट होता है वह अनेक प्रकार की देवोपासना में मनुष्य को संलग्न कर देता है। संसार में अनेक देवी–देवता हैं। जिनकी निःस्वार्थ भाव से पूजा –उपासना करना मनुष्य का कर्तव्य है परन्तु किसी सांसारिक वस्तु की प्राप्ति को उद्‌देश्य बनाकर जो देवोपासना की जाती है वह सकाम कहलाती है। इस प्रकार सात्विक गुण प्रधान पुरूष देवोपासना को अपने जीवन का उद्‌देश्य बना सकते हैं।

2. सकाम समाज सेवा का उद्‌देश्य – सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य सकाम समाज सेवा को जीवन का उद्‌देश्य स्थापित कर सकता है। जब मनुष्य में सत्त्व गुण की प्रधानता हो जाती है तो वह समाज सेवा की ओर उन्मुख होता है क्योंकि उसे समाज सेवा में दो प्रकार के लाभ की सम्भावना प्रतीत होती है। एक तो पुण्य लाभ प्राप्त होना प्रतीत होता है और दूसरे समाज में समाज सेवी के रूप में ख्याति प्राप्ति प्रतीत होती है। इस दोहरे लाभ की सम्भावना से सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य सकाम समाज सेवा का उद्‌देश्य बना लेता है और जीवन पर्यन्त इसी पर तत्पर रहता है। अधिकांश आर्थिक रूप से सम्पन्न मनुष्य कभी–कभी समाज सेवा को जीवन का उद्‌देश्य बना लेते हैं और सेवा के क्षेत्र में बहुत काम करते हैं। शिक्षा–चिकित्सा आदि क्षेत्रों में ऐसे लोग बहुत योगदान करते हैं। इस प्रकार सत्त्व गुण की प्रधानता से सकाम समाज सेवा को जीवन का उद्‌देश्य निर्धारित किया जा सकता है।

3. शास्त्राध्ययन का उद्‌देश्य –

सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य जीवन के उद्‌देश्य को शास्त्रों के अध्ययन में लगा सकता है। वेद, वेदांगो, उपनिषदों, दार्शनिक ग्रन्थों, स्मृतियों, इतिहास तथा पुराण आदि ग्रन्थों के अध्ययन को वह अपना उद्‌देश्य बनाता है। इस क्रम में ज्योतिष

आदि विषयों को भी अपने जीवन का उद्देश्य बनाकर उसका अध्ययन कर सकता है। इस प्रकार के मनुष्य अनेक शास्त्रों के अध्ययन से यथार्थ तत्त्व के सिद्धान्त को भूल जाते हैं और यह निश्चित नहीं कर पाते की समस्त शास्त्रों का निचोड़ क्या है? आप जितने धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे तो आपके समक्ष अनेक प्रकार के सिद्धान्त स्वतः प्रकट हो जायेंगे और उसमें मूल तत्व को समझ पाना और विनिश्चित कर पाना कठिन हो जायेगा। इस प्रकार सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य शास्त्रों के विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों में उलझ जाते हैं और अपने जीवन के उद्देश्य का सही–सही विनिश्चय नहीं कर पाते हैं।

4. तपश्चर्या का उद्देश्य –

सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य तपश्चर्या को अपने जीवन का उद्देश्य बना सकता है। शास्त्रों में अनेक प्रकार के तपों का वर्णन आता है। मनसा, वाचा, कर्मणा तीन प्रकार के तप होते हैं और इन तीन प्रकार के तपों के तीन–तीन अन्य प्रकार भी हैं जिन्हें सात्विक राजस और तामस कहा जाता है। इस प्रकार तप के अनेक भेद हो जाते हैं। सत्त्व गुण की प्रधानता से मनुष्य विशेषकर सात्विक प्रकार के मनसा, वाचा, कर्मणा तपों का अनुष्ठान करता है। जीवन के उद्देश्य को तपश्चर्या बनाना जीवन का विशिष्ट उद्देश्य है पर उसका अंतिम लक्ष्य मुक्ति है तो यह उद्देश्य विशेष हो जाता है। मनसा, वाचा, कर्मणा तपों से मुक्ति का द्वार खुलता है और तप ही मनुष्य को उस पथ की ओर ले जाते हैं जहां पर जाकर मनुष्य मुक्त हो सकता है। जब मनुष्य तपश्चर्या के सुख का उपभोग करने का प्रयास करता है अथवा करता है तो वह अपनें श्रेय साधन से घिर जाता है।

5.सन्त महापुरूषो, ब्राह्मणो, तत्त्वज्ञ पुरूषों की सेवा का उद्देश्य – सत्त्व गुण की प्रधानता से कभी मनुष्य सन्त महापुरूषों की सेवा करता है। महापुरूषों की सेवा से तत्त्वज्ञ पुरूषों की खोज करता है और ब्राह्मणों का विशेष आदर करता है। जीवन के उद्देश्य को इस प्रकार स्थापित कर लेने से मनुष्य उसी प्रकार के कार्य भी करता है। सत्संग का सेवन, तीर्थो और धार्मिक स्थलों का भ्रमण, महापुरूषों की खोज और उनसे प्रभावित रहना ये जीवन का उद्देश्य सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य बना लेता है।

सन्त महापुरूषों की सेवा, उच्चकोटि के शास्त्र वेत्ता ब्राह्मण तथा तत्त्वज्ञ महापुरूषों के दर्शन से बहुत अध्यात्मिक लाभ होता है। इसका निष्काम भाव से सेवन हो तो इससे बहुत लाभ होता है। इस प्रकार अनेक मनुष्य सत्त्व गुण की प्रधानता से सन्त महापुरूषों, ब्राह्मणों तथा तत्त्वज्ञ महापुरूषों की सेवा को अपने जीवन का उद्देश्य बनाता है।

6. मोक्ष की प्राप्ति का उद्देश्य –

सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य कभी–कभी जीवन के उद्देश्य को मोक्ष की प्राप्ति मान लेते हैं और उसके लिए प्रयास भी करते हैं। मोक्ष की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा सत्य मार्ग का सम्यक् विनिश्चय न हो पाना है। जब साधक मोक्ष को जीवन का उद्देश्य निश्चित कर लेता है परन्तु उसे सही सिद्धान्त और सही मार्ग नहीं प्राप्त हो पाता है तो वह अपने मार्ग से भटक जाता है।

मोक्ष प्राप्ति का उद्देश्य बना लेना एक तथ्य है और उसके लिए प्रयत्नशील होना तथा पूरी शक्ति से प्रयत्न करना दूसरा तथ्य है और सम्यक् मार्ग का प्राप्त हो जाना ये तीसरा तथ्य है और उस मार्ग का अनुगमन करके मोक्ष प्राप्त कर लेना ये चौथा और अंतिम तथ्य है। जब तक उक्त चारों तथ्यों का मिश्रण नहीं होता तब तक मुक्ति प्राप्त होना कठिन है। इस प्रकार सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को मुक्ति प्राप्त होना भी निश्चित कर लेते हैं।

ख– रजोगुण प्रधान पुरूषों के जीवन के उद्देश्य –

राजसी गुण प्रधान मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को राजसी गुण की प्रधानता से स्थापित करते हैं और जीवन पर्यन्त उसी के लिए आसक्त होकर कर्म करते रहते हैं। राजसी गुण की प्रधानता से जीवन के उद्देश्य की जो स्थापना होती है वह भ्रमपूर्ण होती है और मनुष्य जीवन पर्यन्त सांसारिक वस्तुओं के संग्रह की चेष्टा करता है और विषय भोगों में प्रवृत्त होकर अपना विनाश कर लेता है। अनुकूलता में सुख का आभास करना और प्रतिकूलता में दुखी हो जाना ऐसे पुरूषों का विशेष लक्षण है। राजसी गुण प्रधान मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को किस प्रकार निश्चित करते हैं इसका अवलोकन कीजिए–

1.धन की प्राप्ति का उद्देश्य – राजसी प्रधान मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को धन की प्राप्ति निश्चिय करता है और उसके लिए वह प्रयास भी करता है क्योंकि वह जीवन के उद्देश्य को धन की प्राप्ति मान लेता है। हमारे सामाजिक जीवन में आज जो अनेक विषयों का पठन–पाठन हो रहा है वह धन की प्राप्ति के उद्देश्य को निश्चय करके हो रहा है अर्थात् उसका उद्देश्य ही धन की प्राप्ति है।

आप किसी किशोरावस्था के छात्र से ये प्रश्न करेंगे की आप के जीवन का क्या उद्देश्य है तो वह अपने जीवन के उद्देश्य को व्यवसाय से जोड़कर यह उत्तर देगा कि हमें डॉक्टर, इंजीनियर, अधिकारी बनना है। ये सब बनकर हम क्या करेंगे? तो हम डॉक्टर, इंजीनियर, अधिकारी बनकर बहुत साधन सम्पन्न बनना चाहते हैं।

धन के एकत्र करने का क्या उद्देश्य है? तो हम सहज ही कहेंगे की हम धन एकत्र करके समाज में अनेक प्रकार की सुख–सुविधायें एकत्र करना चाहते हैं। यह सब एक क्रम है। आज के समाज में राजसी गुणों की प्रधानता है इस कारण अधिकांश मनुष्य धन की प्राप्ति को जीवन का उद्देश्य तय कर लेते हैं।

2. सम्पत्ति की प्राप्ति का उद्देश्य –

राजसी मनुष्य कभी–कभी संपत्ति की प्राप्ति को जीवन का उद्देश्य बना लेता है। वह इसके लिए बहुत प्रयास भी करता है जिससे उसे संपत्ति की प्राप्ति भी होती है। जीवन के उद्देश्य को जब संपत्ति की प्राप्ति को निर्धारित कर लिया जाता है तब उसी के लिए मनुष्य प्रयत्नशील होता है। संपत्ति की प्राप्ति के उद्देश्य के निर्धारण के उपरान्त जो मनुष्य की प्रयत्नशीलता है वह भी राजसी गुण प्रधान है। मनुष्य जीवन में प्रयत्न से जो भी संपत्ति एकत्र कर पाता है वह मृत्यु होते ही उसका साथ छोड देती है। इस कारण यदि हमने अपने जीवन के उददेश्य को संपत्ति की प्राप्ति बनाया है तो यह ठीक नहीं है। राजसी गुण की प्रधानता से जीवन का जो उददेश्य स्थापित होता है वह जीवन पर्यंत मनुष्य को उसी कार्य में लगाये रहता है। अंततः उसे कुछ प्राप्त नहीं हो पाता है।

3– पद की प्राप्ति का उद्देश्य– मनुष्य राजसी गुण के प्रभाव से पद की प्राप्ति की चेष्टा करता है। रजोगुण ही उसे इसके लिए प्रेरित करता है। पद प्राप्ति की चेष्टा करना गलत नहीं है परंतु जब मनुष्य अनैतिक साधनों से पद प्राप्ति की चेष्टा करता है तो यह असमाजिक कहा जाता है। ऐसी स्थिति में पद प्राप्ति का उद्देश्य तमोगुणी हो जाता है। जो मनुष्य सात्विक गुण के प्रभाव से पद प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं उन्हें उचित पद स्वतः उपलब्ध हो जाता है इसके लिए उन्हें विशेष चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

हम जो भी कर्म करते है तो परमात्मा उसका उचित परिणाम देता है। जैसे हम अध्ययन करते हैं तो अध्ययन जिस विषय का होता है उस विषय का ज्ञान परमात्मा स्वतः ही हमारी स्मृति में संचित कर देता है। हमारे चाहने न चाहने से कुछ नहीं होता है। परमात्मा हमारे प्रत्येक कार्य को अपनी दृष्टि में रखता है और हमारे प्रत्येक कार्य का उचित परिणाम स्वतः ही उपलब्ध कराता है। इस कारण जीवन के उद्देश्य को यदि हम पद की प्राप्ति बना लेते हैं और वह येन केन प्रकारेण प्राप्त करना चाहते हें तो यह उद्देश्य ठीक नहीं है। यह जीवन का उद्देश्य भी नहीं होता है। पद प्राप्ति का उददेश्य हमे सात्विक भाव से करना चाहिए। इसमें तम और रज गुण की प्रधानता का परित्याग ही यथेष्ट है।

4– प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य प्राप्ति का उद्देश्य– राजसी गुण की प्रमुखता से मनुष्य अपने जीवन का उद्देश्य प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति बना लेता है। सात्विक कर्मों के उपरांत परिणामस्वरूप हमें प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य की प्राप्ति स्वतः हो जाती है। इसके लिए हमें इच्छा व प्रयत्न नहीं करना पडता। मनुष्य में जब रजोगुण की प्रधानता होती है तब वह प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य प्राप्ति को अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित कर लेता है। प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए वह नाना प्रकार कार्य करता है। और यह विचार करता है कि किस प्रकार के कार्य कर जिससे हमें प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य उपलब्ध हो जाए। यह भावना राजसी गुण की प्रधानता से होती है। प्रतिष्ठा व ऐश्वर्य मनुष्य के कृतकर्मो से स्वतः उपलब्ध होता है। इसलिए प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य की प्राप्ति जीवन का उद्देश्य नही होता है। ऐसा निश्चय एक भ्रम है ।

5–विषय भोगो की प्राप्ति का उद्देश्यः–राजसी गुण की प्रधानता से ही मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को भोगों की प्राप्ति निश्चित कर लेता है। इस उद्देश्य के निर्धारण में खाओ पियो और मौज करो की संस्कृति लागू होती जा रही है। राजसी गुण प्रधान मनुष्य इस प्रकार के उद्देश्य को

जब तय कर लेता है तो वह इसी के लिए प्रयत्नशील भी होता है। यह राजसी गुण का प्रभाव है कि मनुष्य को उसके जीवन के उद्देश्य के प्रति भ्रमित कर देता है। संसार में जितने प्रकार के भोग हैं वह सब क्षणभंगुर और अनित्य हैं क्योंकि समस्त भोगों की तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती है। वृद्धावस्था तक सांसारिक भोगों की लालसा रहना ही इसका लक्षण है। इस कारण सांसारिक विषय भोगों के प्राप्ति के उद्देश्य को ही जीवन का उद्देश्य निश्चित नहीं किया जा सकता है।

6–संसारिक ज्ञान के अर्जन का उद्देश्य– संसारिक ज्ञान की सीमा है। असंख्य विषय आज के विश्व में प्रचलित है। प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य ज्ञान का अर्जन करना चाहता है। जीवनपर्यन्त किसी विषय विशेष का अध्ययन करने के उपरांत हम उसमें पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकते। इस प्रकार सांसारिक ज्ञान के अर्जन को मनुष्य राजसी गुणों की प्रधानता से अपने जीवन का उद्देश्य तय कर लेता है। विज्ञान के कई क्षेत्रों में असंख्य लोग नवीन अन्वेषण में व्यस्त है परंतु नित नयी खोज होने के कारण यह स्पष्ट होता है कि अभी उस क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त नहीं हुई है। संसारिक ज्ञान सर्वथा अपूर्ण ही रहता है इस कारण सांसारिक ज्ञान के अर्जन को जीवन को उद्देश्य निश्चित नहीं किया जा सकता।

राजसी गुण की प्रधानता से मनुष्य असख्य सांसारिक कामनाओ के वशीभूत होकर अपने जीवन के पृथक्–पृथक् उद्देश्यों का निश्चय कर लेता है। यह उद्देश्यों का निर्धारण भ्रमपूर्ण है।

ग– तमोगुण प्रधान मनुष्यों के जीवन के उद्देश्य–तमोगुण के प्रभाव से तामसी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को निर्धारित करता है। उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होता है। तमोगुणी मनुष्य उसी में आवृत रहता है तथा प्रत्येक विषय के अर्थ को प्रतिकूल निकालता है और भ्रमित रहता है। इस कारण उसके जीवन का उद्देश्य पूर्ण भ्रमपूर्ण रहता है तथा संशय से आवृत रहता है जिनका परिणाम अधोपतन होता है। तमोगुणी मनुष्य जीवन के क्या उद्देश्य तय करता है,उसका अवलोकन कीजिए–

1– दूसरों की धन–संपत्ति छीनना–तमोगुणी प्रधान मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को तमोगुण के प्रभाव से दूसरों की धन संपत्ति छीनना मानते है। ऐसे उद्देश्य को तय करने के उपरांत वैसा ही कार्य भी करते हैं। तामसी मनुष्यों में एक अवधारणा पुष्ट हो जाती है कि दूसरो की धन संपत्ति को छीनकर ओर उस पर बलपूर्वक कब्जा करके उससे सुख प्राप्त किया जा सकता है। इसी अवधारणा के पुष्ट होने पर वह दूसरों की धन संपत्ति को छीनना चाहता है और ऐसा करना अपने जीवन का

उद्देश्य बना लेता है। दूसरों की धन संपत्ति को छीनकर हम किसी प्रकार कभी भी सुखी नहीं रह सकते हैं तथा उससे एकत्रित धन और संपत्ति स्वतः ही नष्ट हो जाती है। इस प्रकार तामसी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को दूसरों की धन संपत्ति छीनना मान लेते हैं।

2–हिंसा आदि करना– तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य हिंसक हो जाता है और वह हिंसा आदि विकर्म करने लगता है। हिंसा आदि से समाज में अपना अस्तित्व स्थापित करने का उद्देश्य बनाता है। ऐसे तमोगुणी मनुष्यों का शीघ्र ही पतन होता है। हम जब किसी भी मनुष्य अथवा जीव को दुख देते हैं तो यह पाप कर्म हो जाता है। पाप कर्म का परिणाम अधःपतन है। इस प्रकार तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य का जो जीवन का उद्देश्य हिंसा आदि कर्म करना निश्चित होता है, वह भी जीवन का उद्देश्य नहीं हो सकता क्योंकि उसका परिणाम अंततः पतन ही होता है।

3– दुष्कर्म करना– तमोगुणी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को दुष्कर्म करना मान लेता है। इसका एक कारण है कि तमोगुण मनुष्य के ज्ञान का आच्छादन करके इसका परिवर्तन अज्ञान में कर देता है। अज्ञान से आवृत हो जाने पर वह सत्कर्म के परिणाम को तथा दुष्कर्म के परिणाम को सम्यक्रूपेण नहीं जान पाता है। इस कारण ही दुष्कर्म को अपने जीवन का उद्देश्य मान लेता है। तमोगुणी मनुष्य यदि किसी कारण से रजोगुणी या सतोगुणी हो जाता है तो वह अपने उद्देश्य को स्वतः ही परिवर्तित कर लेता है। इसी प्रकार तमोगुणी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को दुष्कर्म तमोगुण के प्रभाव से मान लेता है।

4–स्वेच्छाचारिता– तमोगुणी मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से मनमाने ढग से आचरण करने को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेता है। ऐसा मनुष्य अपने ऊपर किसी का नियंत्रण नहीं चाहता है। यहां तक कि तमोगुणी मनुष्य माता–पिता आचार्य तथा अपने से श्रेष्ठ मनुष्यों का आदेश–निर्देश भी नहीं मानता है, और स्वेच्छा से व्यवहार करता है। यह स्वेच्छाचारिता का उद्देश्य तमोगुण की अधिकता से होता है। स्वेच्छाचारी मनुष्य अपने कर्मों को मनमाने ढंग से करने का आदी हो जाता है और इसी कारण वह किसी की बात को नहीं मानता हे।

इस प्रकार रोके जाने पर भी उसका अन्यथा अर्थ निकालता है और उचित परामर्श का भी अनुकरण नहीं करता है। तमोगुण के प्रभाव से ही मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को ही स्वेच्छाचारिता मान लेता है।

5– विषय भोगों की प्राप्ति का प्रयास– तमोगुणी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्यों को विषय भोगों की प्राप्ति मान लेता है और उसक लिए अनैतिक और असमाजिक कर्मों का आश्रय लेता हे। तमोगुणी मनुष्य की भोगवृत्ति राजसी मनुष्यों से और अधिक विकृत हो जाती है। राजसी मनुष्यों के विषय भोगों की सीमा होती है। परंतु तामसी मनुष्यों के विषय भोग असीमित हो जाते है। तमोगुणी मनुष्य अपनी रूचि के अनुसार विषय भोगों को निर्धारित करके अपने जीवन के उद्देश्य को तय कर लेते हें। उसके जीवन के लक्ष्य में परिवर्तन भी हुआ करता है। जैसा लक्ष्य निर्धारित होता है वैसा ही कार्य भी होने लगता है। इस प्रकार तमोगुणी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को विषय भोग तय करता है।

6– समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करना– तमोगुणी मनुष्य अपने दुष्कर्मों के कारण अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं। वृहद् पैमाने पर लोगों की हत्या, निरपराध लोगों की हिंसा, अनावश्यक उपद्रव तथा प्रताड़ना ही अपने जीवन का उद्देश्य मान लेते हैं और ऐसे कर्मों के लिए वे निरंतर प्रयत्नशील भी रहते हैं। आज वर्तमान में तमोगुणी मनुष्यों की प्रधानता है इस कारण समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी है। तमोगुणी मनुष्य अपने लाभ एवं सुख की दृष्टि को लक्ष्य बनकर हिंसादि कर्म करते हैं। नशीले पदार्थों की बिक्री कराकर समाज में अव्यवस्था उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार तमोगुणी मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को समाज में अव्यवस्था फैलाना मान लेते हैं।

उपरोक्त प्रकार से सात्विक राजस और तामस प्रधान मनुष्य अपने जीवन के लक्ष्य को पृथक्–पृथक् प्रकार से तय करते हैं। जिन उद्देश्यों का वर्णन उपरोक्त प्रकार से हुआ है उनकी अतिरिक्त भी जीवन के अनेक लक्ष्यों को पृथक्–पृथक् प्रकार के मनुष्यों द्वारा तय किया जाता है। सत्त्वगुण की प्रधानता से सेवा संबंधी लक्ष्य राजसी गुण की प्रधानता से कर्म की आसक्ति से संबंधित लक्ष्य और तमोगुण की प्रधानता से अज्ञान जनित लक्ष्यों का निर्धारण मनुष्य स्वतः ही कर लेता है। इस प्रकार जीवन के लक्ष्य के निर्धारण में ये ही आधार हैं।

19–मुक्ति के अतिरिक्त अन्य उद्देश्य भ्रमपूर्ण हैं–

मनुष्य ने अपने जीवन के जो भी उद्देश्य निर्धारित कर रखे हैं वह मुक्ति के अतिरिक्त जितने भी हैं वह सब के सब भ्रमपूर्ण हैं। मनुष्य के जिन उद्देश्यों का पूर्वोक्त प्रकार से वर्णन हुआ है उन सब के अतिरिक्त भी मनुष्य ने जीवन के जो भी उद्देश्य निर्धारित किये हैं वह सब के सब नितांत भ्रमपूर्ण है। यह तथ्य गहनता से विचार करने पर सत्य प्रतीत होता है। मनुष्य के जीवन के

उद्देश्यों में परिवर्तन भी हुआ करता है क्योंकि आवश्यकतानुसार मनुष्य जीवन के उद्देश्यों को परिवर्तित कर लेता है। उसी क्रम में कभी वह अपनी आवश्यकता व समझ में एक उद्देश्य तय करता है और कभी दूसरा और तीसरा। वह जो भी तय करता है वह सब का सब भ्रमपूर्ण है। यह तथ्य गहनता से विचार करने पर हमें सत्य प्रतीत होता है।

सात्विक गुण के प्रभाव से जीवन के जो भी उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं उससे पुण्य की प्राप्ति होती है और मनुष्य को स्वतः सुख प्राप्त होने लगता है। सुख का सयोग पुण्य के प्रभाव से ही होता है और दुख का संयोग पाप के फलस्वरूप ही बनता है। सात्विक गुण के प्रभाव से जीवन के जो भी उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं उनसे सतकर्म होते हैं। देवोपासना से, देवताओं की प्रसन्नता से पुण्य लाभ रूपी फल प्राप्त होता है। समाज सेवा से लोगों की भलाई के कारण पुण्य लाभ मिलता है। शास्त्रों के अध्ययन से मनुष्य को सत्य व असत्य का बोध हो जाता है और वह सत्याचरण से पुण्य लाभ करता है। तपश्चर्या से मानव जीवन संयमित हो जाता है और संयमित जीवन में मनुष्य संयमित कर्म करता है। इस कारण उसे पुण्य की प्राप्ति होती है जिसका परिणाम सुख होता है। इसी प्रकार शास्त्रज्ञ महापुरूषों और तत्वदर्शी संतों की सेवा से उनकी प्रसन्नता रूपी वरदान से मनुष्य को पुण्य लाभ होता है जिससे सुख की प्राप्ति स्वतः हो जाता है। पुण्य इस जीवन में सुख का कारण है और मृत्यु के पश्चात स्वर्गादिक लोकों की प्राप्ति में सहायक होते हैं। इस प्रकार सत्त्व गुण के प्रभाव से जीवन के जो लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं उनसे सुख तथा स्वर्ग लोक की प्राप्ति संभव है परंतु मुक्ति संभव नही है।

राजसी गुण के प्रभाव से मनुष्य जीवन के जिन लक्ष्यों का निर्धारण करता है उनसे मनुष्य को दुख ही प्राप्त होता है क्योंकि राजस का फल दुख ही कहा गया है। रजोगुण के प्रभाव से धन प्राप्ति के उद्देश्य का निर्धारण करने पर मनुष्य धन का उपार्जन कर लेता है परंतु अंततः धन विनिष्ट होने वाली वस्तु है जिससे मनुष्य को दुख होता है अथवा मृत्यु के समय धन के छूटने के भाव से दुख प्राप्त होता है। वैसे ही जब मनुष्य राजसी गुण के प्रभाव से संपत्ति की प्राप्ति का जो उद्देश्य निर्धारित कर लेते हैं उससे मनुष्य चाहे जितनी ही सम्पत्ति एकत्र कर ले परंतु एकत्र की गयी संपत्ति अंततः दुख का ही कारण होती है। संपत्ति का विनाश अवश्यसंभावी है जिससे दुख भी स्वतः प्रकट हो जाता है।

इसी प्रकार मनुष्य रजोगुण के प्रभाव से पद प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होता है तो उसे पद और प्रतिष्ठा उसके प्रयास के फलस्वरूप प्राप्त हो जाती है। पद और प्रतिष्ठा की

प्राप्ति में मनुष्य को सुख की अनुभूति करता है और उच्च पद तथा अधिक प्रतिष्ठा की चाहना करता है। चूंकि पद और प्रतिष्ठा समाप्त होने वाली स्थिति है इस कारण इसका भी परिणाम हमें अंततः दुख के रूप में प्राप्त होता है। राजसी गुण के प्रभाव से मनुष्य जब अनेक प्रकार के सांसारिक भोगों की ओर उन्मुख होता है तो अत्यंत विषयासक्त हो जाने पर अंततः दुखों को ही प्राप्त होता है। विषयों से कभी तृष्णा की समाप्ति नहीं होती वरन् अनेक प्रकार के सांसारिक रोग ही उत्पन्न होते हैं जो मनुष्य में दुख का कारण हो जाते हैं इस प्रकार रजोगुण के प्रभाव से मनुष्य अपने जीवन के जिन उद्देश्यों का निर्धारण करता है वो भी सब भ्रमपूर्ण हैं और उससे हमें मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

तमोगुण के प्रभाव से भी मनुष्य पृथक्–पृथक् प्रकार के उद्देश्यों का विनिश्चय कर लेता है। तमोगुण के प्रभाव से विनिश्चित किए जाने वाले जीवन के कुछ उद्देश्यों का वर्णन पूर्व में हो चुका है। तमोगुण प्रधान मनुष्य तमोगुण के प्रभाव से जीवन के जो भी उद्देश्य निर्धारित करता है उन सबका परिणाम अंधकार और अधःपतन है। तमोगुण के प्रभाव से मनुष्य जब दूसरों की धन संपत्ति छीनता है, छीनने का प्रयास करता है तो यह कर्म शास्त्र की दृष्टि में विकर्म कहा जाता है। ऐसे लोगों को शास्त्रों में आततायी की संज्ञा दी जाती है। इस प्रकार तमोगुणी मनुष्य का अधःपतन होकर नरकादिक लोकों की प्राप्ति होती है अथवा कीट पशु–पक्षी आदि योनियों में जन्म हो जाता है। इस प्रकार तमोगुण के प्रभाव से जीवन के जो उद्देश्य निर्धारित किए जाते हैं वे मुक्ति की प्राप्ति में हेतु नहीं हो सकते। तमोगुण के प्रभाव से जीवन के अन्य सिद्धांत हिंसा करना, दुष्कर्मों का संपादन, मनमाना आचरण विषय भोगों की प्राप्ति आदि जो करता है उसका अंततः परिणाम अधःपतन ही है जिनसे मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस प्रकार तमोगुण के प्रभाव से जीवन के जो भी उद्देश्य निर्धारित किए जाते है वे मनुष्य को अंततः अंधकार की ओर ही ले जाते हैं।

मानव जीवन के समस्त उद्देश्यों की चर्चा हुई जिसके निर्धारण में मनुष्य संशयग्रस्त रहता है। जो मनुष्य विशिष्ट हैं तथा सत्य के तत्त्व के जिज्ञासु हैं वह अपने जीवन के उद्देश्य को मुक्ति ही निर्धारित करते हैं। यह निर्धारण सत्त्व गुण के प्रभाव से होता है और सत्त्व गुण की शुद्धता में यह निर्धारण प्रगाढ हो जाता है। सात्विक गुण ही मनुष्य को जीवन के सम्यक् उद्देश्य की ओर ले जाता है और उसका निर्धारण सम्यक् रूप से करवा देता है। साधारणतया सत्त्व गुण जब तक राजसी गुण से मिश्रित रहता है तब तक जीवन के लक्ष्य को मुक्ति तय करने में व्यवधान डालता है। शुद्ध सत्त्व गुण जब प्रबल हो जाता है और उसमें रज की मात्रा समाप्त हो जाती है तो मनुष्य

दृढता पूर्वक अपने जीवन के उद्देश्य को मुक्ति ही तय कर लेता है और नाना प्रकार के संशयों को विस्मृत कर देता है। जब तक संसार में नाना प्रकार के संशय रहते हैं तब तक मनुष्य विविध प्रकार के संशयों में विविध प्रकार के उद्देश्यों को तय करता रहता है और जीवन का जो मूल तत्व है वह उसकी समझ में नहीं आता है।

इस प्रकार जीवन में जो भी उद्देश्य मनुष्य के द्वारा निर्धारित किए जाते हैं उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशीलता भी रहती है। परंतु जब जीवन का एकमात्र उद्देश्य मुक्ति का निर्धारण हो जाता है तो सत्त्व गुण में स्थित मनुष्य मुक्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।

20– मनुष्य जीवन के उद्देश्य के प्रति संशयग्रस्त क्यों रहता है ?–

मनुष्य जीवन के उद्देश्य मुक्ति के प्रति संशयग्रस्त क्यों रहता है ? यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। इसे समझकर हम अपनी संशयग्रस्तता को समाप्त कर सकते हैं। मनुष्य के संशयों के बारे में शास्त्रों में पर्याप्त उल्लेख मिलता है और उसी के आधार पर हम संशयों के प्रकारो का प्रस्तुतिकरण करेंगे। मनुष्य को संशय से ग्रस्त रखने में माया की प्रमुख भूमिका है जो परमात्मा की पराशक्ति कही जाती है। माया ही मनुष्य को संशय के ग्रस्त रखती है। इसलिए सर्वप्रथम माया के संबंध में समझना आवश्यक है–

1–माया क्या है– परमात्मा की पराशक्ति को माया कहते हैं। जैसे परमात्मा ने अपनी अपराशक्ति को जगत के निर्माण का दायित्व दिया है वैसे ही पराशक्ति को मनुष्यों को मोहित करने का दायित्व सौंपा है। परमात्मा की पराशक्ति माया मनुष्य को विविध रूपों में मोहित करती है जिससे मनुष्य संशयों से ग्रस्त हो जाता है और जन्म–मरण के चक्र में घूमा करता है। शास्त्रों में माया को त्रिगुणीमयी माया तथा दुस्तर माया कहा गया है। त्रिगुणीमयी माया का अर्थ है कि माया के तीन रूप हैं जिसे सात्विक माया, राजसी माया तथा तामसी माया कहा जाता है और उसको पार पाना अति कठिन है। इस कारण इसे दुस्तर कहा गया है।

माया की प्रबलता को स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा सकता है कि संसार में मनुष्य जितने भी कार्य करता है वह माया की प्रेरणा से ही करता है। सात्विक माया के प्रभाव से शुभ कर्म, राजसी माया के प्रभाव से सांसारिक वस्तुओं तथा विषय भोगों की प्राप्ति के कर्म और तामसी माया के प्रभाव से अनेक प्रकार के असमाजिक कर्म तथा दुष्कर्म का प्रतिपादन किया जाता है। संसार में माया ने असंख्य मोहक वस्तुऐं फैला रखी हैं जिसके जाल मे फंसकर मनुष्य मोहित रहता है और

जीवन पर्यंत उसकी मोहकता में काम करता है। मनुष्य माया द्वारा फैलाई गयी मोहकता के भोग को चाहता है। माया ने जगत में सुंदर वस्तुऐं फैलाई हैं जिसमें नेत्र फंस जाते हैं, सुस्वादु भोजन फैलाए हैं जिसमें जिह्वा फंस जाती है मधुर संगीत फैलाए हैं जिसमें कान फंसे रहते हैं, कोमल वस्तुऐं फैलाई हैं जिसमे त्वचा फंसी रहती है और नाना प्रकार की मनमोहक सुगंध बिखेर दी है जिसमें हमारी नासिका फंस जाती है। मनुष्य कर्मेन्द्रियों के विविध विषयों में भी पूरी तरह से फंस जाता है। यह सब माया का ही कार्य रूप है जिससे मनुष्य संशय से ग्रस्त हो जाते हैं और अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को भूलकर संसार की मोहकता में फंसे रहते हैं। सात्विक, राजस, तामस माया मनुष्य को कैसे से ग्रस्त रखती है जिसका पृथक्–पृथक् अवलोकन कीजिए–

2–सात्विक माया मनुष्य को कैसे संशयग्रस्त रखती है ?

जीवन का उद्देश्य मुक्ति है परंतु सात्विक माया सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य को अनेक सुख दिखाकर मोहित करती है। सात्विक माया मनुष्य को दो प्रकार के सुख दिखाती है। क–लौकिक सुख तथा ख–पारलौकिक सुख ।

उपरोक्त दोनों प्रकार के सुखों की आसक्ति से मनुष्य मोहित रहता है। लौकिक अर्थात इस जगत के सुखों से सात्विक माया मनुष्य को मोहित करती है। लौकिक सुख अर्थात धन, स्त्री, पुत्र, पद, संपत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि सुखों की प्राप्ति के लिए मनुष्य शुभ कर्म करता है। शुभ कर्मों के परिणाम से मनुष्य को धन, स्त्री, पुत्र आदि सुख प्राप्त हो जाते हैं जिनमें वह जीवन पर्यंत फंसा रहता है जिसमें वह अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य मुक्ति को भूल जाता है। यह सात्विक माया का प्रभाव है। यद्यपि राजसी गुण प्रधान पुरूष भी उक्त वस्तुओं की प्राप्ति करना चाहता है परंतु दोनों की प्राप्ति की विधि में अंतर रहता है। सत्त्व गुण प्रधान पुरूष शुभ कर्मों के फलस्वरूप उक्त सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति की चेष्टा करता है परंतु रजोगुण प्रधान पुरूष मनुष्य कर्मासक्त होकर उक्त वस्तुओं की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होता है।

सात्विक माया इस प्रकार सत्त्व गुण प्रधान मनुष्यों को शुभ कर्मों में लौकिक वस्तुओं की प्राप्ति हेतु संलग्न रखती है। सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य में यह भ्रम रहता है कि हमें धन, स्त्री, पुत्र, संपत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि से सुख की प्राप्ति होगी। यह भ्रम सात्विक माया के कारण होता है। इस भ्रम के कारण ही मनुष्य शुभ कर्मों को करता है। इस प्रकार शुभ कर्मों के करने का संशय सात्विक माया उत्पन्न करती है। शुभ कर्मों के संपादन में देवी–देवताओं की सकाम भाव से उपासना, प्रति

उपकार के भाव से समाज सेवा तथा गरीब और असहायों की सकाम भाव से सहायता आदि प्रमुख हैं। सात्विक माया के प्रभाव से मनुष्य बुद्धिमान होते हुए भी अपने जीवन के मूल उद्देश्यों से भ्रमित हो जाता है और संशय ग्रस्त रहकर अनेक प्रकार के शुभ कर्मों के आचरण करता रहता है।

लौकिक सुख की भांति पारलौकिक सुखों की प्राप्ति हेतु भी सात्विक माया भ्रमित करती है। सत्त्व गुण प्रधान मनुष्य जब यह जानते है कि मृत्यु के पश्चात भी स्वर्गादिक लोकों का एक सुखद एवं दिव्य जीवन है तो वह इसकी प्राप्ति हेतु शुभ कर्मों की ओर उन्मुख हो जाता है। जब मनुष्य की मृत्यु हो जाती है तो उसका सूक्ष्म शरीर कर्मानुसार लोकों में भ्रमण करता है। शरीर के तीन प्रकारों का वर्णन प्रसंगवश अनेक पुस्तकों में हुआ है जिन्हें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहा जाता है। यहां पर यह समझ लेना भी आवश्यक है कि मृत्यु के पश्चात स्थूल शरीर तो यहां रहता है परंतु सूक्ष्म और कारण शरीर अपने कर्मानुसार अनेक लोकों में भ्रमण किया करता है। स्वप्नावस्था में हमें सूक्ष्म शरीर की प्रतीति होती है तो अपने को जो हैं जैसे हैं वैसा ही आभास करते हैं। हमें स्वप्न में यह आभास नहीं होता कि हम स्वप्न देख रहे हैं। स्वप्नावस्था का आभास जागृति अवस्था में होता है। मृत्यु के उपरांत सूक्ष्म और कारण शरीर जिस लोक में जाता है वहां भी हमें अपने होने का आभास रहता है।

सत्त्वगुण प्रधान मनुष्य को यह ज्ञात हो जाता है कि स्वर्गादिक लोकों में इस पृथ्वी लोक से अधिक सुख है इस कारण वह उच्च लोकों की प्राप्ति हेतु शुभ कर्म करता है। शुभ कर्मों के संपादन से उसे मृत्यु के पश्चात पारलौकिक सुखों की प्राप्ति हो जाती है। यह पारलौकिक सुखों का भ्रम भी सात्विक माया का ही कार्य रूप है। सात्विक माया भी मनुष्य को पारलौकिक सुखों की ओर आकर्षित करके उससे शुभ कर्म कराती है और मनुष्य को भ्रमित करती है। इस प्रकार पारलौकिक सुखों के संशय को सात्विक माया के द्वारा ही उपार्जित मानना चाहिए।

3—राजसी माया मनुष्य को कैसे संशयग्रस्त रखती है?

राजसी माया का कार्य बडा ही प्रभावशाली एवं वृहद् है। अधिकांश लोक राजसी माया के प्रभाव से संशयग्रस्त रहते हैं। राजसी माया ने जगत में अनेक प्रकार की लुभावनी वस्तुएं बिखेरी हैं इसके प्रभाव से मनुष्य भ्रमित हो जाता है। जैसे शीशा धूप में चमकता है तो उसकी चमक प्रतीत होती है। वैसे ही राजसी माया का प्रभाव जगत में प्रतीत होता है उसकी चमक का आभास साधक पुरूष कर लेते हैं और सामान्य लोग उसकी चमक में फंस जाते हैं और जीवनपर्यंत फंसे रहते हैं।

यह राजसी माया का कार्यरूप और प्रभाव है। राजसी माया के कार्यरूप से, उसके प्रभाव से संपूर्ण जगत प्रभावित है और अपने जीवन के मूल उद्देश्य मुक्ति के प्रति संशयग्रस्त है। राजसी माया से उत्पन्न संशय का अवलोकन कीजिए–

क– एक धनपति व्यक्ति बहुत संपन्न है तथा उसके पास बहुत संपदा है जिसे उसने जीवन पर्यन्त बडे प्रयास से एकत्र किया है। कुछ धन से वह नाना प्रकार के सुखों का उपभोग करता है। अपने परिवार के लोगों को उस धन के उपभोग से लाभान्वित करता है अपने सगे संबंधियों की धन से सहायता करता है परंतु कोई गरीब असहाय भूख से व्याकुल व्यक्ति कुछ धन की याचना करता है तो वह उसे धिक्कार कर भगा देता है। गरीब की सहायता न करना राजसी माया का प्रभाव है। वह धनपति व्यक्ति किसी गरीब को देने में धन की बर्बादी समझता है। यह राजसी माया के कारण संशय उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार राजसी माया मनुष्य को संशय ग्रस्त रखती है।

ख–एक ग्रामीण युवक जब शहर मे आता है तो वहां का रहन–सहन, तडक–भडक देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है और वह भी वैसा ही रहना चाहता है। इसके लिए वह विचार करता है कि क्या किया जाए? इस विचार से वह काम की तलाश करता है और कुछ वर्षों में पर्याप्त धन एकत्र कर लेता है। इसका भी रहन सहन प्रभावित होता है। जीवन शैली बदलती है। शहर की जीवन शैली से प्रभावित होना, धन कमाने का प्रयास करना, तडक–भडक जीवन के प्रति आकर्षित होना, धन एकत्र करके शहरी जीवन शैली अपनाना यह सब का सब राजसी माया का कार्यरूप है। मनुष्य में सांसारिक जीवन के प्रति जो सुख भोग के प्रति आकांक्षा है और उसके लिए जो प्रयत्नशीलता है वह सब का सब राजसी माया के प्रभाव से होती है जिससे संशय उत्पन्न हो जाता है और मनुष्य अपने वास्तविक जीवन के उद्देश्य के प्रति संशयग्रस्त हो जाता है।

ग–एक मनुष्य बहुत अध्ययन करता है और अध्ययन तथा प्रयत्नशील होकर कोई पद प्राप्त कर लेता है। पुनः और उच्च पद हेतु प्रयत्नशील होता है और अति प्रयत्न से उच्च पद भी प्राप्त कर लेता है। उच्च पद प्राप्त करने के उपरांत उसकी जीवन शैली में पर्याप्त परिवर्तन आ जाता है। वह छोटे मनुष्यों से, निम्न पद वालों से नहीं मिलना चाहता है क्योंकि उसकी जीवन शैली ही परिवर्तित हो गयी और उसके पद में सामाजिक उच्चता आ गयी। उच्च पद के लिए प्रयत्न करना सुखद और अच्छा है परंतु उच्च पद प्राप्त होने के उपरांत गरीबों तथा निम्न पद वालों की उपेक्षा करना और अंतर मानना राजसी माया का ही कार्यरूप है। राजसी माया इस प्रकार का संशय उत्पन्न कर

देती है और छोटे–बडे का भेद प्रकट कर देती है। निम्नवर्गीय लोगों को निकृष्ट समझने का भाव राजसी माया के कारण होता है।

घ–मनुष्य जब किसी क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेता है तो वह प्रतिष्ठित हो जाता है तथा वह प्रतिष्ठित हो जाने पर अपने को सामान्य लोगों से पृथक मानता है। ऐसी ही स्थिति उच्च पदस्थ लोगों की भी रहती है। सामान्य लोगों से अपने को उच्च मानना, सामान्य लोगो से मिलने से परहेज करना, उन्हें हीनता की दृष्टि से देखना यह सब का सब राजसी माया के कारण ही होता है। राजसी माया से ग्रस्त मनुष्य में अपनी प्रतिष्ठा, पद, गौरव, ऐश्वर्य का बोध रहता है। यह मिथ्या बोध राजसी माया के कारण होता है। मनुष्य मनुष्य है उसके वास्तविक स्वरूप में कोई अंतर नहीं है। पद, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, ज्ञान के कारण जो अंतर प्रकट हो जाता है वह राजसी माया के ही कारण होता है। इस प्रकार राजसी माया मनुष्य को संशय ग्रस्त कर देती है।

ङं–राजसी माया के कारण मनुष्य में अनेक प्रकार के संशय प्रकट हो जाते है जिससे मनुष्य वास्तविक ज्ञान से विमुख हो जाता है और मिथ्याचरण करने लगता है। जो मिथ्याभास होता है उसका कुछ अवलोकन कीजिए–

1–अपने को पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य के कारण उत्कृष्ट समझना और दूसरों को निकृष्ट मानना।

2–थोडी सी जानकारी हो जाने पर अथवा किसी क्षेत्र का थोड़ा सा ज्ञान हो जाने पर अपने को ज्ञानवान समझना तथा दूसरों को अज्ञानी मानना।

3–अपने परिवार के सदस्यों को अपने सगे संबंधियों को अपना मानना तथा दूसरो को पराया समझना । 4–कारण अकारण ईर्ष्या, द्वेष करना तथा दूसरों की बुराई करना, दूसरों के दोषों को खोजना।

5–मृत्यु काल तक धन का, संपत्ति का त्याग न कर पाना और उसे अपना मानकर व्यवहार करना।

6–अनेक प्रकार के सांसारिक व्यसनों में पड़ जाना तथा उसमें आसक्त होकर समय बर्बाद करना।

7–शरीर, शक्ति, बल, सामर्थ्य, पहुंच का अभिमान करना तथा यह आभास करना कि हम इन कारणों से श्रेष्ठ हैं।

8–उच्च वर्ण का आश्रम का अभिमान रखना और वर्ण तथा आश्रम के कारण अपने को श्रेष्ठ समझना।

इस प्रकार राजसी माया मनुष्य को संशयग्रस्त रखती है तथा मनुष्य को अनेक प्रकार के सांसारिक जाल में फांसकर उसे जीवन के वास्तविक उद्देश्य मुक्ति से विलग कर देती है। मनुष्य में राजसी माया के कारण जो संशय रहता है वह विशेष कर सांसारिक वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति भ्रम के कारण ही रहता है। राजसी माया मनुष्य को संसार में लगाए रखती है और उसमें राजसी क्रियायें आरंभ कर देती है।

4–तामसी माया मनुष्य को कैसे संशयग्रस्त रखती है ?

तमोगुण से प्रभावित मनुष्य को तामसी माया अपने प्रभाव और घेरे में रखती है। तमोगुण का प्रमुख कारण अज्ञान को उत्पन्न करना है। जब मनुष्य के ज्ञान का आच्छादन हो जाता है तब वह अज्ञानजनित कार्य करता है और प्रत्येक तथ्य का प्रतिकूल अर्थ निकालता है। यह संशय तामसी माया के प्रभाव से होता है। तामसी माया से आवृत मनुष्य में संशय ग्रस्तता कैसे रहती है ? जिससे वह अपने जीवन के मूल उद्देश्य मुक्ति को भूल जाता है। तामसी माया से ग्रस्त मनुष्य की संशयग्रस्तता किस प्रकार होती है ? उसका अवलोकन कीजिए–

1–तमोगुणी मनुष्य को तामसी माया मदिरा, मांस आदि भोजन को प्रेरित करती है। तमोगुणी मनुष्य की रूचि मंदिरा मांसादि में तमोगुण के कारण होती है। इस प्रकार तमोगुणी माया तमोगुणी मनुष्य को तामसी भोजन ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती है और संशयग्रस्त करती है।

2–तामसी भोजन करने से तामसी वृत्तियां बढ जाती है तथा मनुष्य की बुद्धि अज्ञान से आवृत हो जाती है। उसका विवेक विनिष्ट हो जाता हैं और वह कर्तव्य तथा अकर्तव्य कर्मों में अंतर नहीं स्थापित कर पाता। इसे तामसी माया का ही रूप मानना चाहिए।

3–तामसी माया मनुष्य को भ्रमित कर देती है जिससे मनुष्य नाना प्रकार के दुष्कर्मों का संपादन करने लगता है और वह स्वभावतः तामसी माया से प्रेरित हुआ त्याज्य कर्मों का संपादन करके संशयग्रस्त रहता है।

4. तामसी माया मनुष्य को दुष्कर्म हेतु प्रेरित करती है, और उसे शंसयग्रस्त रखती है। इस कारण वह संशकित रहकर एक के पश्चात दूसरा और दूसरे के पश्चात तीसरा इस प्रकार असंख्य दुष्कर्म करता रहता है।

5. तामसी माया की प्रेरणा से तमोगुणी मनुष्य दुष्कर्मों के बारे में ही विचार करता रहता है। उसका मन तामसी माया से प्रेरित हुआ सदैव दुष्कर्मों के क्रियान्वयन के बारे में

चिंतन करता रहता है और उसमें इसे आनंद की अनुभूति होती है। तामसी माया के प्रभाव से ही ऐसा मनुष्य निरंतर घूमा करता है।

6. तामसी माया तमोगुणी मनुष्य में क्रोध की उत्पत्ति कर देती है तथा क्रोध की उत्पत्ति से वह हिंसा करने लगता है। हिंसादि कर्मों में सुख का मिथ्याभास करता है। यह तामसी माया ही प्रभाव है।

7. हिंसक कर्म सामान्य मनुष्यों को दुखद प्रतीत होते हैं परंतु तमोगुणी मनुष्य उनमें आनंद का अनुभव करता है तथा हिंसा करके दुख के स्थान पर सुख का अनुभव करता है। यह तामसी माया के कारण ही होता है।

8–तामसी माया तमोगुणी मनुष्य की बुद्धि भ्रमित कर देती है। जिससे उसके विवेक का क्षय हो जाता है और वह मनमाना आचरण करने लगता है। समाज में इससे अव्यवस्था फैलती है। जब मनुष्य सामाजिक व्यवस्था के नियमों का पालन करता है तब वह विचारवान कहा जाता है और जब सामाजिक व्यवस्था का परित्याग कर देता है तो उसे विवेकहीन कहा जाता है। यह विवेकहीनता तामसी माया के प्रभाव से ही होती है।

9–संसारिक विषय भोगों में अत्यंत आसक्ति तामसी माया के कारण होती है। तामसी माया के प्रभाव से मनुष्य में तमोगुण बढता है और वह विषय भोगों की ओर प्रबलता से उन्मुख हो जाता है। उसमें अपनी क्रिया विधि बढाता है। तामसी माया उसे अनेक प्रकार के विषय भोगों की ओर उन्मुख करके अपने गोद में ले लेती है। ऐसी स्थिति में मनुष्य विषय भोगों में ही सुख का अनुभव करता है और उसी में प्रवृत्त हो जाता है। विषय भोगों को तामसी माया का ही प्रभाव जानना चाहिए।

10–वर्तमान में तमोगुणी मनुष्यों की संख्या वृहद् है, अधिक है। इस कारण ही समाज में हिंसा आदि कर्म, अव्यवस्था, दुष्कर्म, मनमाने आचरण का व्यवहार बढता जा रहा है। अधिकांश लोग इन सब कर्मों को उचित मानकर वैसा ही आचरण करते हैं। यह सब तामसी माया का प्रभाव ही जानना चाहिए। मनुष्यों में तामसी माया ही अनेक प्रकार के अनैतिक संशय उत्पन्न कर देती है।

एक माया के तीन रूपों का आपने पृथक्–पृथक् अवलोकन किया। यह पृथक्–पृथक् रूप ही अनेक प्रकार के संशय उत्पन्न करके संसार को भ्रमित रखते हैं।

जैसे एक ही सूर्य प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल अपने विविध तीन रूपों में प्रकट होता है तथा पृथक्–पृथक् प्रकार से तेज का आभास कराता है। एक ही सूर्य पृथक्–पृथक् देशों में पृथक्–पृथक् काल में अपना पृथक्–पृथक् प्रभाव दिखाता है। उसी प्रकार एक ही माया अपने अनेक रूप रूप धरकर मनुष्यों को मोहित करती है और उन्हें संशकित कर देती है। क्योंकि माया परमात्मा की पराशक्ति हैं इस कारण इससे निवृत होना अत्यंत कठिन है। परमात्मा की एक मात्र शरण ग्रहण कर लेने पर ही इससे निवृत्ति हो सकती है।

जगत की जितनी भी वस्तुएं हैं, विषय भोग हैं वे सब के सब माया के द्वारा ही उपार्जित हैं तथा उनमें सुख का मिथ्याभास माया के कारण ही है। विशेष तथ्य यह है कि माया विषयों में सुख का आभास कराती है तथा उनमें अतृप्ति का कारण भी वही है। जिससे मनुष्य पुनः–पुनः विषय भोगों की ओर स्वतः ही प्रवृत्त हो जाता है। यदि एक बार किसी विषय भोग में मनुष्य की तृप्ति हो जाए तो मनुष्य उस ओर पुनः प्रवृत्त नहीं होगा, परंतु माया के कारण ऐसा संभव नहीं हो पाता और मनुष्य पुनः–पुनः विषय भोगों में तृप्ति की खोज में घूमा करता है। इस प्रकार माया पुनः–पुनः संशकित करके विषयों की तृप्ति हेतु प्रवृत्त कराती है। इस कारण माया का प्रभाव, इसका कार्यरूप वृहद प्रभावशाली है जिससे प्रत्येक मनुष्य प्रभावित रहकर संशकित रहता है।

21–रजोगुणी तथा तमोगुणी मनुष्य मुक्ति के संबंध में विचार नहीं करते–:

रजोगुणी तथा तमोगुणी मनुष्य गुणों से प्रभावित होकर ही मुक्ति के बारे में विचार नहीं कर सकते क्योंकि रजोगुण और तमोगुण उन्हें विचार ही नहीं करने देता। तमोगुण से प्रभावित मनुष्य यदि मुक्ति के बारे में चर्चा हो तो वह उस चर्चा को सुनना भी नहीं चाहेगा तथा अनेक प्रकार के अतर्कसंगत तथ्यों को प्रस्तुत करेगा। यही स्थिति रजोगुणी मनुष्यों को भी होती है। ऐसे मनुष्य संसारिक भोगों तथा विषयों के कारण मुक्ति के बारे में विचार नहीं करते हैं। यदि मुक्ति के बारे में उनसे चर्चा की जाती है तो वह सुनकर भी उसे व्यवहार में नहीं लाता। और अधिक कहने पर उत्तर देता है इस बारे में हमने कभी विचार नहीं किया है। अवसर आने पर उचित विचार करेंगे। रजोगुणी मनुष्य यह विषय वृद्ध लोगों का मानता है अर्थात वृद्धावस्था में इस प्रकार की बातें होनी चाहिए उसका ऐसा विचार रहता है। यह विचार उसके अपने गुण के कारण

ही होता है। तमोगुणी मनुष्य जीवन के उद्देश्य के बारे में विचार नहीं करते हैं क्योंकि वह भयंकर रूप से भोग प्रधान वृत्ति के मनुष्य होते हैं। दुष्कर्मों के विचार आने पर मन में सुख का आभास करते हैं। हिंसा और पाप कर्म से आवृत मनुष्य मुक्ति के बारे में कल्पना भी नहीं कर सकता। तमोगुणी मनुष्य पशुवत् जीवन जीता है। जैसे एक पशु दूसरे पशु को कुछ खाते देखकर उस भोजन को उससे छीनने का प्रयास करता है और अनावश्यक रूप से बैर भाव मानता है। उसी प्रकार तमोगुणी मनुष्य भी अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी करता है और दूसरों के अधिकार की वस्तुओं को छीनता है और उन्हें अनावश्यक रूप प्रताडित भी करता है। यह सब विचार उसके मन में रहता है। मन से विचारण के कारण उसकी प्रवृत्ति राक्षसी–आसुरी ही होती है ऐसे तमोगुणी मनुष्य मुक्ति के बारे में कैसे विचार कर सकते हैं। नहीं कर सकते है। इस प्रकार मुक्ति का विषय तमोगुणी मनुष्यों से बहुत दूर है।

रजोगुणी मनुष्य भी मुक्ति के बारे में कामनाओं की अधिकता के कारण विचार नहीं कर सकता है। रजोगुणी मनुष्य कामनाओं के कारण ही जीता है और कामनाओं की प्राप्ति के प्रयास में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यह रजोगुणी मनुष्य की जीवन प्रक्रिया है। धन की प्राप्ति को प्रमुखता से मानने वाला, धन की प्राप्ति के उपायों पर विचार करने वाला तथा धन की प्राप्ति के प्रयासों में लगा रहने वाला मनुष्य मुक्ति के बारे में क्या विचार कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता है। रजोगुणी मनुष्य का उद्देश्य धन कमाना तथा उससे असंख्य कामनाओं को पूरा करना रहता है। इस प्रयास में वह अपना समग्र जीवन खो देता है और अंततः मृत्युकाल में भी अपनी कामनाओं को अधूरा अनुभव करता है। संसारिक आसक्ति ग्रस्त मनुष्य मुक्ति के बारे में कैसे विचार कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता है।

रजोगुण और तमोगुण दबाकर सत्त्व गुण प्रकट होता है। जैसे शरीर में जब अस्वस्थता आती है तब रोगों का प्रकटीकरण अनायास ही होता है। वैसे ही रजोगुण और तमोगुण के समाप्त होने पर सत्त्व गुण का प्रकटीकरण स्वतः होता है। अथवा सत्त्व गुण जब प्रकट होता है तब रजोगुण और तमोगुण विलुप्त हो जाता है। उसका प्रभाव, कार्य, गुण, लक्षण आदि स्वतः ही गायब हो जाते हैं। यह सब अनायास ही नहीं होता है। किसी कारण से, किसी घटना से मनुष्य जब अपने जीवन के बारे में विचार करता है तथा यह सोचता है कि यह जीवन क्यों मिला है? इसका क्या उद्देश्य है ? तो वह

दुष्कर्म तथा आसक्ति को छोड़ने का प्रयास करता है। जब दुष्कर्म और आसक्ति छूटती है तब तमोगुण और रजोगुण का प्रभाव कम हो जाता है। दुष्कर्म और आसक्ति ही सत्त्व गुण के विकास में प्रमुख बाधा है। इस प्रकार रजोगुणी व तमोगुणी मनुष्य जीवन के उद्देश्य के बारे में विचार नहीं कर सकते हैं, क्योंकि उनमें संसारिक आसक्ति तथा दुष्कर्मिता के प्रति रूझान होता है।

22–सत्त्व गुण के विकास के कारण :–

सत्त्व गुण के विकास के अनेक कारण है परंतु यह निश्चित है कि रजोगुण और तमोगुण के विनाश से सत्त्व गुण का विकास स्वतः हो जाता है। सत्त्व गुण के विकास में आधारभूत कारण क्या हैं ? इस पर कुछ विचार प्रस्तुत हैं परंतु इनके अतिरिक्त भी सत्त्व गुण के विकास के अन्य कारण भी हो सकते हैं। कुछ प्रमुख कारणों का अवलोकन कीजिएः–

1– किसी कारण से संसारिक वस्तुओं तथा भोगों से घृणा उत्पन्न हो जाने पर संसारिक आसक्ति का विनाश हो जाता है तब मनुष्य परमात्मा की ओर स्वतः ही अग्रसर होता है और परमात्मा के स्मरण से सत्त्व गुण की अनायास ही वृद्धि हो जाती है।

2– दुष्कर्मों में किसी कारण से अनिच्छा अथवा दुष्कर्मो में अनासक्ति होने के कारण उनकी ओर झुकाव का कम हो जाना भी सत्त्वगुण की वृद्धि का कारण होता है। ऐसी स्थिति में शेष दो रज व तमगुण शांत हो जाते हैं।

3–किसी कारण से भगवान के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाने से भी सत्त्व गुण बढता है। क्योंकि भगवान के प्रति श्रद्धा हो जाना सत्कर्मों की ओर उन्मुख हो जाना है। सत्कर्मों के व्यवहार से सत्त्वगुण अनायास ही बढता है।

4– कभी–कभी मनुष्य साधु पुरूषों, महापुरूषों की संगति से उनके प्रवचनों को सुनकर भी सत्त्व गुण की वृद्धि का प्रयास करता है और संत पुरूषों द्वारा बताए गए मार्ग के आचरण से सत्त्व गुण वृद्धि को प्राप्त हो जाता है।

5– जहां पर सत्संग होता है, धर्म पर चर्चा होती है अथवा भगवान के नाम का संकीर्तन होता है वैसे स्थान पर निवास करने पर भी रजोगुण व तमोगुण का स्वतः ही क्षय हो जाता है। और तब सत्त्व गुण वृद्धि को प्राप्त हो जाता है। 6– पूर्व जन्मों के

संस्कार से भी मनुष्य स्वतः स्वाभाविक रूप से सत्त्व गुण की वृद्धि को प्राप्त होता है। पूर्व जन्मों के कृत शुभ कर्मों से मनुष्य स्वतः ही सत्कर्मों की ओर अग्रसर हो जाता है और ऐसी स्थिति में सत्त्व गुण बढता है।

7–माता–पिता–आचार्य के सात्विक होने पर भी मनुष्य के सत्त्व गुण का विकास हो जाता है क्योंकि माता पिता आचार्य के गुणों का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है।

8–मनुष्य किसी कारण से संसारिक विषयों का अध्ययन समाप्त करके आध्यात्मिक विषयों का अध्ययन जब आरंभ कर देता है तथा आध्यात्मिक ज्ञान से वैसा ही शास्त्र सम्मत आचरण करता है तो भी उसका सत्त्व गुण बढता है।

9–सत्त्व गुण के विकास में भोजन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। सात्विक भोजन से सत्त्व गुण स्वतः उसी प्रकार बढता है जैसे तमोगुणी और रजोगुणी भोजन से तमो व रजोगुण बढता है।

23–सत्त्व गुण का क्रमिक विकास और पराकाष्ठा–

तमोगुण और रजोगुण का जैसे–जैसे क्षय होता जाता है वैसे–वैसे ही सत्त्व गुण बढ़ता जाता है। यह स्थिति कुछ वैसी है जैसी तराजू के दो पलडों की होती है। एक पलडे पर जैसे जैसे भार बढ़ता जाता है, वैसे ही दूसरा पलडा ऊंचा उठता जाता है। तमोगुण तथा रजोगुण का पलडा वैसे वैसे नीचा गिरता जाता है। जैसे जैसे सत्त्व गुण का पलडा ऊपर उठता जाता है। रजोगुण व तमोगुण के त्याग से सत्त्व गुण की अनायास ही वृद्धि हो जाती है। सत्त्व गुण की वृत्तियां स्वतः ही प्रतीत होती हैं और प्रकट होने लगती है। जैसे शरीर में ज्वर तेज आने पर उसकी औषधि लिए जाने पर ज्वर धीरे–धीरे उतरता है और शरीर में स्वस्थता आने लगती है, वैसे ही रजोगुण और तमोगुण के क्षय से सत्त्व गुण स्वतः बढता है। जैसे गंदे दर्पण में स्पष्ट प्रतिबिंब प्रतीत नहीं होता ज्यों–ज्यों गंदा दर्पण साफ किया जावे तो उसमें प्रतिबिंब स्पष्ट प्रतीत होता है। दर्पण का गंदापन साफ करने की क्रिया धीरे धीरे होती है। ज्यों–ज्यों दर्पण स्वच्छ होता जाता है त्यों–त्यों प्रतिबिंब स्पष्ट होता जाता है।

रजोगुण और तमोगुण को शरीर की गंदगी का, अस्वस्थता का कारण मानना चाहिए तथा इससे संशय प्रगाढ होते जाते हैं। मनुष्य जीवनपर्यंत कर्म करता है और उसके

समस्त कर्म माया से प्रभावित रहते हैं। इस कारण मनुष्य यदि रज और तम के प्रभाव से कर्म करता है तो उसके कर्मों में संशय को स्पष्ट देखा जा सकता है। जैसे–जैसे तम और रज समाप्त होते है ंतो उसमें संशय का निवारण स्वतः ही होता जाता है और मनुष्य संशय मुक्त होता जाता है। सत्त्व गुण की वृद्धि क्रमिक होती है और वह साधक के प्रयास पर आधारित होती है। साधक जितना प्रयास करता है उतना ही सत्त्व गुण प्रकट होता है, विकसित होता है। सत्त्व गुण के विकसित होने तथा प्रभावयुक्त होने और प्रखर होने के लक्षण हैं। प्रकाश का उत्पन्न होना तथा बुद्धि में यथार्थ के विनिश्चय करने की क्षमता का बढ़ना। मन चूंकि इन्द्रियों का स्वामी है इस कारण इन्द्रियों में भी प्रकाश का उद्‌भव होना सत्त्व गुण की वृद्धि माना जाता है।

1– मन में प्रकाश की उत्पत्ति क्या है? :– मनुष्य का मन अनेक प्रकार से संसारिक विषयों, घटनाओं के बारे में विचार करता रहता है। यह विचारण अधिकांशतः तमोगुणी और रजोगुणी होता है। कामनाओं के बारे में, तथा कामनाओं की पूर्ति के उपायों के बारे में मन का अधिकांश विचार चलता है। जब कामनाएं विकृत हो जाती हैं और उनकी प्राप्ति के प्रयास भी विकृत हो जाते है ंतब शरीर पर तमोगुण का स्पष्ट प्रभाव रहता है। जब कामनाएं सामाजिक मर्यादा को ध्यान में रखकर, समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के उद्‌देश्य वाली होती है ंतो उसकी प्राप्ति का प्रयास नैतिक रहता है और ऐसी कामनाएं रजोगुणी होती हैं। तमोगुणी और रजोगुणी कामनाओं में अंतर रहता है।

सत्त्व गुण के प्रभाव से कामनाओं का समापन होने लगता है। संसारिक विषय वस्तुओं के प्रति कामनाएं जब समाप्त होने लगे तब समझना चाहिए कि सत्त्व गुण बढ़ा हुआ है। ऐसा इस कारण होता है क्योंकि सत्त्व गुण के प्रभाव से सतोगुणी मनुष्य यह जान लेता है कि कामनाओं का अंत नहीं है और उससे जीवन में विकृति आ जाती है। जीवन फंस जाता है। मन में वास्तविकता का प्रकटीकरण हो जाता है। यह मन का प्रकाश है। कामनाओं का धीरे–धीरे समापन, विषयों के बारे में विचारण का समापन, कामनाओं की प्राप्ति का प्रयास न करना ऐसा विचार जब होता है तब इसे मन में प्रकाश की उत्पत्ति समझना चाहिए। मन में जब प्रकाश उत्पन्न हो जाता है तब सत्त्व गुण का प्रभाव पड़ता है और इन्द्रियों में विषयों के प्रति आसक्ति भी समाप्त होती है। इन्द्रियां मन के अधीन कार्य करती हैं। इस कारण इन्द्रियों में भी सत्त्व गुण के प्रभाव से प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। इन्द्रियां मनोहारी दृश्यों के प्रति आकृष्ट नहीं होती हैं,

सुस्वाद भोजन में रूचि नहीं रखती हैं और मधुर गीत–संगीत को ग्रहण नहीं करती हैं। कोमल स्पर्श के संयोग का अभाव हो जाता है। ऐसा सत्त्व गुण के विकास में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। यह सब का सब मन में प्रकाश की ही उत्पत्ति कहा जाता है।

2– बुद्धि में यथार्थ का विनिश्चय क्या है? :–

सत्त्व गुण की वृद्धि होने पर बुद्धि यथार्थ विषय का विनिश्चय करने लगती है। जैसे स्वच्छ दर्पण में स्पष्ट प्रतिबिंब प्रतीत होता है वैसे बुद्धि भी समस्त विषयों का सही–सही विनिश्चय करने के योग्य हो जाती है। संसार विनाशी है और संसार की समस्त वस्तुएं विनाशशील धर्म वाली है। समस्त संसारिक विषय क्षणभंगुर हैं। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य संसार को प्राप्त करना नहीं है वरन् मुक्ति को प्राप्त करना है। यह तथ्य सात्विक बुद्धि जान लेती है। बुद्धि भी तीन प्रकार की होती है जिसे तामसी, राजसी और सात्विक बुद्धि कहा जाता है। सात्विक बुद्धि तीन तथ्य जान लेती हैः–

1–किस कार्य में प्रवृत होना है? और किससे निवृत होना है?

2–मनुष्य के लिए कर्तव्य कर्म क्या है ? और अकर्तव्य कर्म क्या है?

3– मनुष्य को बंधन कैसे होता है ? और मुक्ति की प्राप्ति कैसे होती है?

इन तीन तथ्यों को जो बुद्धि जानती है वह बुद्धि सात्विक कही जाती है।

इस प्रकार सात्विक बुद्धि भी यथार्थ का सम्यक् विनिश्यक कर सकने में समर्थ होती है। मन अनेक विषयों का विचारण करता है और उन विषयों से सात्विक बुद्धि सही तथ्यों को ग्रहण कर लेती है और अनावश्यक और निरर्थक तथ्यों को छोड़ देती है। जिस प्रकार विचारशील मनुष्य किसी पुस्तक का अध्ययन करता है तो वह सार तत्त्व को ग्रहण कर लेता है और अनावश्यक तथ्यों को छोड़ देता है। उसमें नीर–क्षीर विवेक की क्षमता होती है। इस प्रकार किसी भी विषय का विनिश्चय कर लेना ही बुद्धि के यथार्थ तत्त्व का विनिश्चय करना है। बुद्धि जब यथार्थ तत्त्व का विनिश्चय करती है तब मनुष्य उचित रूप से कार्य करता है। क्योंकि कर्म का आरंभ बुद्धि के विनिश्चय से होता है। बिना बुद्धि के विनिश्चय से कोई कार्य नहीं हो सकता है। रजो व तमोगुणी बुद्धि वाले मनुष्य यथार्थ तत्त्व का विनिश्चय नहीं कर पाते हैं। इस कारण वे संशकित रहते हैं।

3–सत्त्व गुण की पराकाष्ठा :–

तमो व रजोगुण के क्षय से सत्त्व गुण वृद्धि पाता है परंतु जब तक तमो व रजो गुण पूर्ण रूप से निवृत नहीं हो जाता तब तक सत्त्व गुण प्रखरता से प्रकट नहीं होता है। जब तक तमो व रजो गुण का थोड़ा से भी प्रभाव रहता है तब तक पूर्ण सत्त्व गुण प्रभाव में नहीं आता। साधना से साधक रजो व तमो गुण का पूर्ण समापन कर देता है और सत्त्व गुण को प्रखर कर पराकाष्ठा तक पहुंचता है। सत्त्व गुण जब पराकाष्ठा पर होता है तब निम्न लक्षण स्वतः प्रगट हो जाते हैं।

क– कर्म विज्ञान को जान जाता है :– परमात्मा की कर्म व्यवस्था विषय को कर्म विज्ञान कहा जाता है। परमात्मा की कर्म व्यवस्था अत्यंत रहस्यप्रद, पारदर्शी एवं गूढ है। इसे जान पाना असंभव और दुस्तर है। इसी कारण यह कहा जाता है कि कर्म की गति गहन है। मनुष्य के किस कर्म का क्या परिणाम है ? तथा यह परिणाम किस प्रकार प्राप्त होता है ? यह जाना जा पाना बहुत कठिन है। सत्त्व गुण की पराकाष्ठा में मनुष्य परमात्मा की कर्म व्यवस्था को जान जाता है। हमारे किस कार्य का क्या परिणाम है? यह जानकारी तथा ज्ञान सत्त्व गुण की प्रखरता से हो जाता है। यह तथ्य अनुभव गम्य है। कुछ तथ्यों का वर्णन शास्त्रों में आता है और साधक अपनी साधना से अनुभव के आधार पर जान जाता है। यह कर्म विज्ञान भी अत्यंत दुरूह विषय है जिसे सत्त्व गुण की पराकाष्ठा पर जाकर जाना जा सकता है।

खः– परमात्मा के प्रभाव को जानता है :– सत्त्व गुण की पराकाष्ठा को पहुंचा साधक सत्त्व गुण के कारण परमात्मा के प्रभाव को जान जाता है। इस जगत की समग्र गतिविधि, क्रियाएं, चेष्टाऐं उसके आदेश से ही होती हैं। सूर्य, चन्द्र परमात्मा के आदेश से ही अपने कर्मों में बरतते हैं तथा समय से कार्य करते हैं। समस्त लोकों के लोकपाल इस एक परमात्मा के संकेत और निर्देश पर ही अपने कार्यों को यथावत् संपादित करते हैं। समग्र जगत एक मात्र परमात्मा में ही चेष्टा कर रहा है। वह परमात्मा ही समस्त जगत में व्याप्त हो रहा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है। वह ही समस्त जगत में पिरोया हुआ है। इस प्रकार के प्रभाव को जानकर सत्त्वगुण की पराकाष्ठा को पहुंचा साधक उस एक मात्र परमात्मा की शरण ग्रहण कर लेता है और नित्य प्रसन्न रहता है।

ग– प्रकृति के कार्य को जानता है :– परमात्मा के आदेश से प्रकृति ने समग्र ब्रह्माण्ड की रचना की है तथा जगत में पहाड़ पर्वत, समुद्र, नदियां, रेगिस्तान आदि रचे हैं। वह प्रकृति अव्यक्त है और व्यक्त शक्ति की तरह काम करती है। इतनी विशाल रचना देखकर यह प्रतीत होता है कि प्रकृति अत्यंत शक्तिशाली है। इसकी शक्ति की कल्पना सहजता से ही की जा सकती है। सात्विक गुण की पराकाष्ठा को पहुंचा हुआ साधक प्रकृति के कार्य को देखकर ही उसकी क्रिया शक्ति का सहज अनुमान लगा सकता है। इतना सुव्यवस्थित निर्माण ईश्वर की सहायता के बिना नही किया जा सकता है। यह तथ्य सत्त्व गुण की पराकाष्ठा को पहुंचा मनुष्य जान लेता है। प्रकृति को परमात्मा की सहचरी मानता है। वस्तुतः प्रकृति माता के रूप में है और परमात्मा पिता के रूप में है। इसके संयोग से जगत का निर्माण हो रहा है।

घ– माया की गति और प्रभाव को जानता है :– परमात्मा की माया दुस्तर है जिसकी गति और प्रभाव को जाना जा पाना बहुत कठिन है। इस कारण मनुष्य माया की गति और प्रभाव से अंजान रहकर जीवन पर उसके प्रभाव में ही कार्य करता है। माया मनुष्य को नचाती है और वह नाचता है। मनुष्य माया की प्रेरणा से नाना प्रकार के दुष्कर्म करता है। तामसी माया मनुष्य को अज्ञान से आवृत रखकर उसे अनेक प्रकार के अवैधानिक कार्यों हेतु प्रेरित करती है। राजसी माया मनुष्य को कर्मों में आसक्त रखती है। सात्विक माया मनुष्य को सुख की आसक्ति के बंधन में रखती है। इस प्रकार मनुष्य माया के प्रभाव से संशय युक्त रहकर नाना प्रकार की योनियों में भ्रमण किया करता है। सत्त्व गुण की पराकाष्ठा को प्राप्त मनुष्य माया की गति और उसके प्रभाव को जानता है और परमात्मा की मात्र शरण लेकर उससे मुक्त होने की चेष्ठा करता है।

ड– जीवन के उद्देश्य का विनिश्चय कर लेता है :– मानव जीवन का क्या उद्देश्य है? यह तथ्य ठीक ठीक प्रकार से न जानने के कारण ही मनुष्य अपने जीवन में पृथक्–पृथक् प्रकार के उद्देश्यों को विनिश्चत करता है। जितने मनुष्य है उन सबके पृथक्–पृथक् उद्देश्य हैं। इसी कारण जब हम कई लोगों से उनके जीवन के उद्देश्य के बारे में प्रश्न करते है ंतो प्रत्येक का उत्तर पृथक–पृथक होता है। क्या एक ही जाति के मानव के पृथक्–पृथक् उद्देश्य हैं? यह नहीं हो सकता है। एक प्रश्न के

अनेक उत्तर नहीं होते हैं। एक गणितीय प्रश्न का एक ही उत्तर होता है। इस कारण मानव जीवन के जो पृथक्–पृथक् उद्देश्यों का कथन होता है वे सबके सब भ्रमपूर्ण हैं। मानव जीवन के एक उद्देश्य मुक्ति को सत्त्व गुण की पराकाष्ठा पर पहुंचा मनुष्य जान लेता है और उसका विनिश्चय भी कर लेता है।

च– तत्वानुभूति के सिद्धांत को जानता है :– संसार में प्रत्येक कर्म का सिद्धांत होता है क्योंकि बिना सिद्धांत के कोई कर्म नहीं होता है। प्रत्येक यंत्र का एक नियम है और उसी नियम के अधीन यंत्र का परिचालन होता है। जैसे हम कोई यंत्र परिचालित करना चाहते है ंतो उसकी चाभी को लगाना, चाभी घुमाना ओर यंत्र के स्टार्ट होने पर उसका परिचालन करना यह सब का सब क्रमिक कार्य है। जो सिद्धांत के आधार पर होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कर्म का सिद्धांत है। मनुष्य पहले माता के गर्भ में आता है, जन्म लेता है, बाल्यावस्था व कौमारावस्था तथा युवावस्था को पार करता हुआ वृद्धावस्था तक जाता है। यह सब क्रमिक होता है। इसी प्रकार तत्वानुभूति का सिद्धांत है इसे सात्विक गुण की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ साधक जान जाता है।

छः– सत्य और असत्य में अंतर को स्थापित कर लेता है :– सत्य क्या है? असत्य क्या है? इस तथ्य को जान पाना कठिन है। अधिकांश मनुष्य असत्य को ही सत्य समझकर अपना समग्र जीवन समाप्त कर लेते हैं। जीवन के संपर्क में आने वाले समस्त तथ्य असत्य हैं परंतु उन्हें सत्य समझकर ही मनुष्य जीता है। ब्रह्म सत्य है और जगत मिथ्या है यह श्रुति कहती है परंतु हम सब ब्रह्म को मिथ्या और जगत को सत्य मान लेते हैं तथा जगत को सत्य मानकर उसका व्यवहार करते हैं। सत्त्व गुण की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ साधक जगत के असत्य स्वरूप को जानता है और ब्रह्म के सत्य स्वरूप को पहचानता है तथा वैसा ही व्यवहार करता है। सत्य और असत्य के तथ्यों में अंतर को स्थापित कर लेता है। यह सब सत्त्व गुण की पराकाष्ठा को पहुंचे हुए मनुष्य का विशिष्ट गुण है।

24– सत्त्व गुण की पराकाष्ठा से मुक्ति के उद्देश्य का विनिश्चय :–

सत्त्व गुण की पराकाष्ठा पर पहुंचा साधक अपने जीवन के सिद्धांत का विनिश्चय कर लेता है तथा यह जान लेता है कि मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य

मुक्ति ही है अन्य कुछ नहीं है। मुक्ति का संशय रहित विनिश्चय होना ही सत्त्व गुण की पराकाष्ठा कही जाती है। किसी भी कर्म का पहले विनिश्चय होता है उसके उपरांत उस कर्म का संपादन होता है। यह सिद्धांत है। रजो व तमो गुण प्रधान मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य को मुक्ति मान लेने का विनिश्चय कदापि नहीं कर सकते।

सत्त्व गुण के विशिष्ट प्रभाव से जीवन का लक्ष्य मुक्ति होता है और साधक यह निश्चय करता है कि संसार में जितनी वस्तुएं हैं उनकी प्राप्ति का विनिश्चय करना स्वप्नवत् कार्य है। वे सब प्राप्त हो जाने पर ही जीवन का उद्देश्य अप्राप्त रहता है क्योंकि जीवन का उद्देश्य ही संसार की प्राप्ति नहीं है। संसार में धन, संपत्ति, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, सम्मान चाहे जितनी मात्रा में प्राप्त हो जावे वह सब का सब इसी जगत में रह जाता है और उसकी पहुंच मृत्यु के पश्चात् नहीं है। इस कारण संसार की प्राप्ति का विनिश्चय ही मिथ्या है। एक मात्र मुक्ति ही इस जीवन का उद्देश्य है। यह विनिश्चय सत्त्व गुण की प्रधानता में सम्यक् रूपेण हो जाता है।

जीवन का उद्देश्य मुक्ति है यह जान लेना प्रथम तथ्य है और उसका विनिश्चय कर लेना यह दूसरा तथ्य है तथा उसकी प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना यह तीसरी बात है। अति प्रयत्न से प्राप्त कर लेना यह चौथी बात है। सत्त्व गुण के आ जाने पर साधक जीवन के लक्ष्य को जान जाता है। सत्त्व गुण की प्रखरता में जीवन के सिद्धांत मुक्ति का निश्चय कर लेता है तथा शुद्ध सत्त्वगुण की प्राप्ति में मुक्ति की प्राप्ति का प्रयास पूरी शक्ति से करता है और सत्त्व गुण के अतिक्रमण से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार मुक्ति प्राप्त के चार चरण हैं–

1– जीवन का उद्देश्य मुक्ति है ऐसा ज्ञान हो जाना और यह ज्ञान जागृत रहना।

2– जीवन का उद्देश्य मुक्ति है ऐसा विनिश्चय है और यह विनिश्चय बना रहना।

3– जीवन का उद्देश्य मुक्ति है इसके लिए सम्यक् और संशय रहित प्रयास करना।

4– जीवन का उद्देश्य मुक्ति है और इस उद्देश्य को प्राप्त करके मुक्त हो जाना।

मुक्ति की इच्छा वाले मुमुक्षु पुरूषों को चारों चरण सावधानी से संशय रहित होकर पार करने चाहिए। इन सबमें महत्वपूर्ण तथ्य मुक्ति प्राप्ति की विधि को ओर उसकी

प्रक्रिया को जानना है तथा जानकर उसका व्यवहार करना है। मुक्ति प्राप्ति इतनी सरल नहीं है इसी कठिनता का उल्लेख श्री गीता जी के निम्न श्लोक से होता है। उस प्रकरण का अवलोकन कीजिए–

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कष्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।। 7/3।।

हजारों मनुष्यों में से एकाद्य मनुष्य परमात्मा की अनुभूति के लिए प्रयत्न करता है तथा उन प्रयत्नशील हजारों मनुष्यों में एकाध साधक ही परमात्मा को तत्त्व सहित जान पाता है।

यहां पर एक तथ्य स्पष्ट करना आवश्यक है कि जब तक मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर लेता है तब तक वह मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है। साधारणतयः परमात्मा की प्राप्ति को मुक्ति समझें। परमात्मा की प्राप्ति में त्रिगुणीमय माया ही सबसे अधिक बाधक है और जो परमात्मा का ही नित्य निरंतर स्मरण करता है वह त्रिगुणीमयी माया को पार कर लेता है अर्थात् परमात्मा की अनुभूति प्राप्त कर लेता है। परमात्मा की अनुभूति की विधि और जो प्रक्रिया है उसका हम वर्णन बाद में करेंगे। पहले मुक्ति की उपलब्धता में क्या संशय है उसका उल्लेख किया जा रहा है–

25– मुक्ति के मार्ग में संशय और उसका निवारण :–

आस्थावान, श्रद्धायुक्त मनुष्य धर्म के प्रति आकृष्ट होता है और जिसमें श्रद्धा ही नहीं है ऐसे रजो व तमोगुणी स्वभाव के मनुष्य धर्म के प्रति आकृष्ट ही नहीं होते है। वे सब संसारिक विषयों की ओर आकृष्ट रहते हैं। आस्थावान तथा श्रद्धायुक्त मनुष्य सात्विक गुण के प्रभाव से परमात्मा की ओर आकृष्ट होता है तब उसके मार्ग में अनेक प्रकार के संशय आ जाते हैं। उसके मार्ग में किस प्रकार के संशय आते हैं उसका अवलोकन कीजिए–

क– इष्ट का संशय :– श्रद्धायुक्त मनुष्य के समक्ष सबसे प्रथम संशय इष्ट अर्थात् किसकी उपासना करे? इस तथ्य का संशय होता है। जब वह उपासना आरंभ करता है तो यह विचार करता है कि हमारा पूज्य कौन है? जिसकी उपासना से हम इस

भवसागर से मुक्त हो सकते हैं। साधक इस संबंध में संशकित भी रहता है। एक श्रद्धावान साधक अनेक प्रकार के देवी देवताओं की उपासना करता है। इष्ट के निर्धारण में अपने से श्रेष्ठ मनुष्यों से परामर्श भी करता है तथा श्रेष्ठ मनुष्य उसे इष्ट की उपासना करने का परामर्श देता है जिसकी वह स्वयं उपासना करता है जिससे उसे लाभ प्रतीत होता है। अनेक श्रेष्ठजनों से परामर्श करके भी साधक यह निश्चय नहीं कर पाता है कि वह किसकी उपासना करे? जिस विचारधारा के जो महानुभाव है वे उसके अनुकरण की बात करते हैं। यहां एक तथ्य और स्पष्ट करना है कि आज हमारे देश में अनेक महानुभाव ने वास्तविक विचारधारा को विकृत कर दिया है तथा ऐसे सिद्धांतों को उत्पन्न कर दिया है जिससे साधक भ्रमित हो जाता है। वह अनेक प्रकार की विचारधाराओं में विभाजित होकर यथार्थ सत्य से विमुख हो जाता है। यह बहुत प्रबल संशय है जो साधकों में रहता है। यह बड़ी ही दुखद बात है कि हम किसी मनुष्य को इष्ट के बारे में अथवा पूजा पद्धति के बारे में भ्रम उत्पन्न कर देते हैं। इस संबंध में कुछ विचारधाराओं का अवलोकन कीजिए–

1– मनुष्य परमात्मा नहीं हो सकता–

आस्थावान मनुष्य की तीन स्थितियां हैं जिन्हें क्रमशः

1– साधक 2–उत्कृष्ट साधक तथा 3– सिद्ध पुरूष कहते हैं।

यह तीनों प्रकार के पुरूष परमात्मा नहीं हो सकते। भगवान के रूप में प्रकट नहीं हो सकते। साधक धार्मिक आस्था तथा शास्त्र ज्ञान के कारण सम्मानीय होता है। उत्कृष्ट साधक विशेष अनुभूति और शास्त्रों में पारंगत हो जाने के कारण पूजनीय हो जाता है। सिद्धपुरूष परमात्मा के संसर्ग और तत्त्वज्ञता के कारण परम पूजनीय होता है। सिद्ध पुरूषों को परमात्मा कुछ विशिष्ट प्रकार की सिद्धियां प्रदान कर देते हैं जिनका उल्लेख शास्त्रों में आता है। विशिष्ट योगी को विशिष्ट सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं उसके कारण वह पूजनीय हो जाता है।

तत्त्वदर्शी महानुभाव उपासना के योग्य होता है परंतु वह परमात्मा के समतुल्य नहीं हो सकता। तत्त्वदर्शी महापुरूषों को साधारणतयः मुक्ति प्राप्त हो जाती है ओर वह जन्म मरण के चक्र से मुक्त होकर भगवान के परमधाम में वास करते हैं। हमारे देश में

समय समय पर अनेक सिद्धजन हुए हैं। अनेक सिद्ध पुरूषों की मजार व समाधि हैं जिन पर पूजा व उपासना का कार्य भी चलता है परंतु उन्हें भगवान के समकक्ष लाकर उनकी पूजा उपासना करना मिथ्याचारिता है, उससे कोई लाभ भी नहीं होता। इस तथ्य को संशय रहित होकर समझना चाहिए। महापुरूषों की पूजा उपासना के बजाय उनकी सिद्धांतों की पूजा होनी चाहिए क्योंकि उनके सिद्धांतों के आचरण से हमें आध्यात्मिक लाभ हो जाता है।

वर्तमान में भी अनेक महानुभावों ने अपने को भगवान के रूप में घोषित कर दिया है यह स्थिति बहुत घातक है। आस्थावान लोग उन्हें ईश्वर समझकर उनकी पूजा आराधना करते हैं। इस कार्य से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती है। कोई भी महापुरूष, साधु–संत उसी रूप में सम्मानीय है जैसा वह है। भगवान के रूप में पूज्यनीय नहीं है और न ही किसी महानुभाव को अपने को भगवान घोषित करना चाहिए, न ही किसी आस्थावान से अपनी उपासना भगवान के रूप में करवानी चाहिए। किसी साधक को भी भगवान के रूप किसी व्यक्ति से उपासना नहीं करवानी चाहिए। जो ऐसा करते हैं वे संशय में हैं। जो ऐसा करवाते हैं वह परमात्मा की व्यवस्था में दोषी हैं और उन्हें परमात्मा अवश्य ही दंड देगा। मैं ईश्वर हूं, मैं सिद्ध हूं, मैं बलवान हूं ऐसा मनुष्य को कभी नहीं मानना चाहिए। जो ऐसा मानते हैं वे आसुरी स्वभाव के पुरूष हैं तथा परमात्मा की दंड व्यवस्था में भागी हैं।

2– कोई भी महिला आदिशक्ति नहीं हो सकती– कुछ महिलाओं ने अपने को आदिशक्ति घोषित कर दिया है और वे आदिशक्ति के रूप में पूजा उपासना करवाती हैं। मूर्ख लोग उन्हें आदिशक्ति मानते हैं तथा उनके समर्थक आदिशक्ति के रूप में मान्यता देते हैं। ऐसे महानुभाव सत्यता से कोसों दूर हैं। इन्हें असत्य के मार्ग के अवलंबन के कारण नाना प्रकार के दुखों का सामना करना पड़ता है। वे न तो मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं और न ही वह शक्ति प्राप्त कर सकते हैं जिससे मुक्ति हस्तगत होती है। परमात्मा की दो शक्तियां हैं जिन्हें सृष्टि का निर्माण और जगत को मोहित करने का कार्य परमात्मा के द्वारा सौंपा गया है। उन शक्तियों को प्रकृति और माया कहा जाता है। ये दोनों शक्तियां अनादि हैं। यह संपूर्ण जगत प्रकृति के द्वारा रचा गया है जिसमें परमात्मा अध्यक्ष है तथा माया के द्वारा मोहित किया जाता है जिससे जीव परमात्मा के निकट न जा सके। यदि कोई मनुष्य किसी महिला को आदिशक्ति मानता

है तो वह नितांत भ्रम में हैं और इस भ्रम को तत्काल समाप्त करके एकमात्र परमात्मा की शरण ग्रहण कर लेनी चाहिए।

3– कोई मनुष्य विष्णु, ब्रह्मा व शिव नहीं हो सकता– कुछ मनुष्यों ने अपने को भगवान विष्णु, प्रजापति ब्रह्मा और शिव घोषित कर दिया है। विष्णु, ब्रह्मा व शिव देव योनि में आते हैं। वे मनुष्य योनि में नहीं आते। यदि किसी संस्थान ने किसी व्यक्ति विशेष को उनके रूप में घोषित कर दिया है तो वह आध्यात्म के मूल सिद्धांत को विकृत कर रहा है। आध्यात्म क्षेत्र में क्रिया साधना का मूलतत्त्व विकृत हो जाता है तो उससे समस्त क्रिया पद्धति प्रभावित होती है। यह हमें निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति विशेष सृष्टि का उत्पादन नहीं कर सकता। इस कारण किसी भी महानुभाव को अपने को ब्रह्मा, विष्णु व शिव घोषित नहीं करना चाहिए। यदि इन्होंने ऐसा घोषित किया है तो यह मात्र संशय ही है तथा आध्यात्म के मूल सिद्धांत को विकृत करने वाला कृत्य है। हम यदि अपने को सृष्टि कर्ता ही घोषित कर देंगे तो हमारे अनुयायी अनावश्यक रूप से भ्रमित होंगे तथा यथार्थ तथ्य से विमुख रहेंगे। ऐसी स्थिति में मुक्ति तो दूर हमें हमारे मूल सिद्धांत का ही ज्ञान नहीं हो पाएगा। परमात्मा ऐसे लोगों को दंडित करता है।

4–तत्त्व दर्शन सहजता से नहीं हो सकता– कुछ संस्थाओं और महानुभाव ने तत्त्व दर्शन सहजता से कराने के भ्रामक सिद्धांत की उद्‌घोषणा कर रखी है। वे अपने को आत्मज्ञानी बताते हैं। ऐसे महानुभावों को स्पष्ट रूप से बताना चाहूंगा कि तत्त्वदर्शन होना तथा तत्त्वज्ञ बनना कोई सहज कार्य नहीं है। यह कार्य अति कठिन है तथा बड़े प्रयास से उपलब्ध होता है। वह स्थिति एक आश्चर्यप्रद और विस्मयकारी स्थिति है जिसे तत्त्वदर्शन कहा जाता है। तत्त्वदर्शन के लिए मनुष्य को गुणातीत होना पड़ता है। और गुणातीत का अर्थ है त्रिगुणों से पृथक को जाना, त्रिगुणों के प्रभाव से अपने को मुक्त कर लेना। यह स्थिति त्रिगुण की प्रबलता के कारण शीघ्र नहीं आ पाती। एक सामान्य व्यक्ति तम और रज गुण से मुक्त नहीं हो पाता और वह सत्त्व गुण तक नहीं पहुंचता। फिर वह गुणों से अतीत कैसे हो सकता है?

तत्त्वदर्शी पुरूष को परमात्मा की अनुभूति होने लगती है। परमात्मा की सानिध्यता का आभास हो जाता है। एक सामान्य व्यक्ति की पहुंच वहां तक नहीं होती है। इस

कारण कोई संस्था अथवा मनुष्य सहजता से तत्त्वदर्शन कराना चाहता है तो यह संभव नहीं है। इस भ्रम को अपने मन से, बुद्धि से निकाल देना चाहिए कि कोई मनुष्य हमें सहजता से परमात्मा की अनुभूति करा देगा। ऐसी प्रक्रिया होती तो दुनिया के लाखों लोग तत्त्वदर्शी हो जाते। ऐसे बहुत लोग तत्त्वदर्शन का भ्रम पाले रहते हैं और संशय से मुक्त नहीं हो पाते हैं। ऐसे महानुभावों के लिए इतना ही कहना उचित होगा कि वे तत्त्वज्ञता का भ्रम छोड़े, गुणों की क्रिया विधि को समझें और गुणों का अतिक्रमण करके तत्त्वदर्शी हो जाएं। हमें सही मार्ग का उचित अनुसरण करना चाहिए।

5— देवी—देवताओं की उपासना से मुक्ति नहीं मिलती :— परमात्मा ने मनुष्य की सृष्टि की तरह से देव सृष्टि की है अर्थात देवताओं का सृजन किया है। साधारणतया मनुष्यों से देवगण श्रेष्ठ होते हैं। देवगणों को सृष्टि के समय परमात्मा ने पर्याप्त अधिकार देकर सृष्टि की व्यवस्था करने का आदेश दिया था। देवी—देवताओं की उपासना करना मनुष्य का कर्तव्य है। ऐसा शास्त्रों में उल्लेख आता है। जब मनुष्य विधि पूर्वक देवी—देवताओं की उपासना करता है तब वे प्रसन्न होकर मनुष्यों को इच्छित वस्तुएं प्रदान कर देते हैं। प्रत्येक देवगण जो अधिकार प्राप्त हैं वह उसकी सीमा में रहकर मनुष्यों को पूजा उपासना से प्रसन्न होकर वांछित फल प्रदान करता है तथा मृत्यु के उपरांत अपने लोकों में भी रखते हैं। यही देवी—देवताओं की सकाम उपासना का परिणाम है। देवी—देवताओं की उपासना से मुक्ति प्राप्त नहीं होती है क्योंकि मुक्ति देना उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं है। देवी—देवताओं की उपासना से मनुष्य इस लोक और परलोक में सुखों को भोगता है और जन्म—मृत्यु के चक्कर में घूमता रहता है। इस प्रकार देवी देवताओं की उपासना से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

6— यज्ञादिक कर्म मुक्ति का हेतु नहीं हो सकते —: यज्ञादिक कर्मों के अनुष्ठान से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। शास्त्रीय अथवा वैदिक विधि से जिन यज्ञों का संपादन होता है उनके निश्चित उद्देश्य होते हैं। बिना उद्देश्य के यज्ञों का संपादन नहीं होता है। वैदिक रीति से क्रतु का भी उद्देश्य होता है। प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए पृथक्—पृथक् प्रकार के यज्ञों के संपादन की व्यवस्था है। सुख—संपन्नता, समृद्धि पुत्र, राज्य, संकट निवारण, पद प्राप्ति आदि के लिए यज्ञों का संपादन होता है। ये सब लौकिक वस्तुएं हैं जो यज्ञों द्वारा विधिपूर्वक प्राप्त की जा सकती हैं। यद्यपि वर्तमान में

यज्ञों का संपादन सामूहिक रूप से होता है इससे समाज का कल्याण होता है। यथार्थ तथ्य तो यह है कि यज्ञों के संपादन की विधि को जानने वाले विद्वान अल्प ही हैं। मुक्ति की प्राप्ति में यज्ञों का अंतःकरण की शुद्धि में विशिष्ट सहयोग है, जिससे साधक को साधन काल में आध्यात्मिक उन्नति में सहायता प्राप्त होती है परंतु उससे मुक्ति का मार्ग तो प्रशस्त होता है परंतु मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार यज्ञादिक कर्म भी मुक्ति का हेतु नहीं हो सकते हैं।

7—एकमात्र परमात्मा ही इष्ट हैः— मनुष्य की उत्पत्ति, उसकी स्थिति तथा मृत्यु का एकमात्र कारण परमात्मा है। अन्य कोई दूसरी सत्ता नहीं है। परमात्मा की कर्म व्यवस्था में मनुष्य रहता है तथा जैसा वह कर्म करता है उसका सम्यक् परिणाम देने वाला एकमात्र परमात्मा ही है। शुभ कर्मों का शुभ व अशुभ कर्मों का अशुभ फल परमात्मा की व्यवस्था में हमें स्वतः प्राप्त हो जाता है। संपूर्ण जगत उसके आश्रय में रहता है। वह एकमात्र परमात्मा ही ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता है तथा उत्पन्न प्राणियों के भोजन की व्यवस्था भी करता है। इसी को स्थिति कहा जाता है। अंततः प्रलय भी उसी के संकेत पर होती है। समग्र जगत उस एकमात्र परमात्मा में ही चेष्टा करता है क्योंकि वह समस्त जगत में व्याप्त है और समस्त जगत उसमें व्याप्त है। वह हमारा स्वामी है हम उसके सेवक हैं। वह हमारे कल्याण को चाहने वाला है। अतः हमारा शुभेच्छु है।

समग्र ब्रह्माण्ड की सत्ता को चलाने वाला सबका एकमात्र हितैषी है। इस कारण वह परमात्मा ही पूज्यनीय है और हम सबका इष्ट है। जगत के प्रभाव, स्थिति और प्रलय परमात्मा को छोड़ अन्य सत्ता नहीं कर सकती इसलिए हमारी उपासना का लक्ष्य उसी ओर होना चाहिए। अन्य किसी को अपनी उपासना का लक्ष्य बनाकर हमें मूर्खता पूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए। देवी देवताओं की उत्पत्ति का कारण होने से वह देवी—देवताओं के लिए भी उपास्य है। सूर्य, चन्द्र, वरूण, इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, कुबेर आदि समग्र देवगण उस एकमात्र परमात्मा की उपासना करते हैं। इस कारण वह परमात्मा ही हमारा एकमात्र इष्ट है और पूजा के योग्य है।

8—परमात्मा ही मुक्ति प्रदायक हैः— परमात्मा ही मनुष्यों को मुक्ति प्रदान कर सकता है। मानव जीवन का उद्‌देश्य मुक्ति है इस कारण मुक्ति सबसे बहुमूल्य वस्तु और स्थिति है। किसी के जीवन में इससे बहुमूल्य और स्थिति नहीं हो सकती है। हम

जीवन में बहुत प्रयास से करोड़ों रूपए, अपार धन संपत्ति, पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य एकत्र कर लें परंतु वह मुक्ति के समक्ष अत्यंत निकृष्ट है। मुक्ति की तुलना में इन सबका कोई मूल्य नहीं है। यह सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु परमात्मा ही हमें प्रदान कर सकता है अन्य कोई नहीं। यह तथ्य मन में हमें अच्छी प्रकार से बिठा लेना चाहिए और संशय का निवारण कर लेना चाहिए।

परमात्मा को मुक्ति प्रदान करने का अधिकार है तथा वह पात्र व्यक्तियों को स्वतः ही मुक्ति उपलब्ध करा देता है। पात्रता मनुष्य को विकसित करनी पड़ती है। जैसे शिक्षा के क्षेत्र में कोई विद्वान विशिष्ट उपाधि प्राप्त करने हेतु बहुत परिश्रम करता है और अंततः उसे परीक्षा भी देनी पड़ती है । इसी प्रकार हमें भी मुक्ति की प्राप्ति हेतु परिश्रम करना पड़ेगा और परीक्षा भी देनी पड़ेगी। मुक्ति की प्राप्ति हेतु परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरांत ही हमें स्वतः ही मुक्ति हस्तगत होगी। परमात्मा को मुक्ति देने का अधिकार है तथा वह इस अधिकार का उपयोग पात्रों को मुक्ति देने हेतु करता है। इस कारण हमें परमात्मा से मुक्ति देने की प्रार्थना करनी चाहिए ।

26– मुक्ति की पात्रता :–

मनुष्य जीवन पर्यन्त धन–सम्पदा का उपार्जन करता है और मृत्युकाल में उपार्जित धन को अपने प्रिय पात्रों को सौंपना चाहता है। अधिकांश प्रिय पात्र पुत्र आदि होते हैं। पुत्रों के न होने पर सगे संबधी अथवा अन्य लोग भी हो सकते हैं। कभी–कभी कतिपय दुर्लभ मामलों में मनुष्य अन्य किसी प्रिय पात्र को भी धन–संपत्ति का हस्तांतरण कर देता है। इस हस्तांतरण में प्रिय पात्रता ही आधार है। जीवन में भी अपने देखा होगा कि हम अनेक वस्तुओं जो मूल्यवान होती हैं वह भी अपने प्रिय पात्रों को उपहार स्वरूप देते हैं। क्या कारण है कि हम अपनी सर्वाधिक तथा मूल्यवान वस्तुएं अपनी प्रिय पात्रों को ही सौपते हैं। इसका उत्तर है कि प्रिय पात्र ही मनुष्य को प्रिय होता है। और उसमें स्नेह करके ही हम अपनी मूल्यवान वस्तुएं उसे देना चाहते हैं।

मुक्ति एक अत्यंत मूल्यवान वस्तु और स्थिति है जो परमात्मा ने अपने पास सुरक्षित रखी है। परमात्मा अपने प्रिय पात्रों को मुक्ति सहजता से दे देता है। इस कारण हमें मुक्ति की प्राप्ति हेतु उसका प्रिय पात्र बनना पड़ेगा। बिना प्रिय पात्र हुए वह हमें मुक्ति कदापि नहीं देगा। जब वह हमारी प्रिय पात्रता को परख लेगा तथा

उसके अनुकूल होने पर वह हमें मुक्ति प्रदान कर देगा। परमात्मा की प्रिय पात्रता हेतु हमें अपने में कुछ गुणों का विकास करना पड़ता है। यह कौन से गुण हैं जिनके विकास से हम परमात्मा के प्रिय पात्र हो जाते हैं। उन गुणों का अवलोकन कीजिए–

1– समस्त मनुष्यों से द्वेष न करना।

2– समस्त प्राणियों के प्रति करूणा का भाव।

3–ममता रहित हो जाना।

4– अहंकार से विगत हो जाना।

5–सुख–दुख में एकसमान रहना।

6–क्षमावान रहना।

7– जो कुछ भी प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहना।

8– परमात्मा प्राप्ति के प्रति दृढ निश्चय कर लेना।

9– परमात्मा में मन और बुद्धि का अर्पण कर देना।

10– किसी को परेशान न करना।

11– प्रसन्नता, ईर्ष्या, भय से मुक्त हो जाना,

12– अपेक्षा विहीन हो जाना।

13– योग में कुशल होना।

14– उदासीनवत् व्यवहार करना।

15– प्रिय की प्राप्ति में प्रसन्न न होना और अप्रिय की प्राप्ति में शोक ग्रस्त न होना।

16– शत्रु और मित्र को समान समझना।

17– मान–अपमान में सम रहना।

18– संसार की आसक्ति से विमुक्त हो जाना।

19–अनावश्यक वार्तालाप न करना।

20– स्थिर बुद्धि हो जाना।

21– प्रत्येक प्रकार से संतुष्ट रहना।

इन गुणों के शरीर में विकास करने से परमात्मा की प्रिय पात्रता प्राप्त हो जाती है और वह प्रसन्न होकर हमें मुक्ति प्रदान कर देता है। उपरोक्त गुण ही मुक्ति की पात्रता हैं। मनुष्य का कर्तव्य है कि मुक्ति की पात्रता को विकसित करे और मुक्ति की प्राप्ति कर ले।

क–उपासना विधि का संशय :–

संसार में अनेक प्रकार की उपासना विधियां प्रचलित हैं। अनेक मत'–मतांतर, संप्रदाय, धर्म, मान्यताएं चल रही हैं। सबकी अपनी–अपनी उपासना पद्धति है। अनेक संत महात्माओं ने पूजा उपासना की कई विधियों की व्याख्या की है। धर्म शास्त्रों में भी कई प्रकार से उपासनाओं का वर्णन होता है। साधक इन अनेक प्रकार की पूजा पद्धतियों को देखकर संशकित हो जाता है और वह यह निश्चय नहीं कर पाता कि किस प्रकार की पूजा पद्धति का अनुकरण किया जाए। साधकद्वारा पूजा पद्धति का विनिश्चय न कर पाना भी एक प्रकार का संशय है जिसका निवारण शीघ्रता से नहीं होता है। उसका एक कारण है कि हमारे अंतःकरण में कुछ संस्कार रहते हैं वे पूर्ववर्ती मान्यताओं को दृढ किए रहते हैं। जैसे एक व्यक्ति किसी प्रकार की पूजा उपासना करता है तो वह उसमें संतुष्ट अथवा असंतुष्टि का आभास भी करता है। वह यह विनिश्चय नहीं कर पाता है कि हमारी पूजा विधि सही है। चाहे वह त्रुटिपूर्ण हो।

वैसे ही कोई मत को मानने वाला कोई व्यक्ति विशेष को ईश्वर मानता है तो उसकी यह मान्यता यद्यपि भ्रमपूर्ण ही है परंतु वह उस मान्यता का परित्याग नहीं करना चाहता। वह किसी महानुभाव को ईश्वर मानता है तो वह मानता ही रहेगा। यद्यपि यह संशय है। उसकी इस मान्यता के साथ जो पूजा उपासना होगी वह तो भ्रमपूर्ण ही रहेगी परंतु वह संस्कार के कारण आस्था, विश्वास के कारण उसे नहीं छोड़ना चाहेगा। यह भी एक प्रकार का उपासना विधि का संशय है। इससे शीघ्र निवृत्ति नहीं हो पाती है।

कुछ महानुभाव साकार ब्रह्म के उपासक हैं तथा कुछ लोग निराकार ब्रह्म के उपासक हैं । साकार ब्रह्म के उपासक की अपनी पूजा पद्धति है तथा निराकार ब्रह्म के उपासकों की अपनी पूजा विधि है। साकार और निराकार ब्रह्म के उपासकों में परस्पर मान्यता को लेकर अनेक प्रकार के तर्क वितर्क और कुतर्क हुआ करते हैं। एक ब्रह्म की उपासना में साकार तथा निराकार शब्द ने विभेद उत्पन्न कर दिए हैं। सगुण और निर्गुणरूपी संशय की उत्पत्ति कर दी है। इसी मान्यता के आधार पर पूजा पद्धतियों में भेद भी उत्पन्न हो जाता है। यह सब का सब पूजा पद्धतियों का संशय ही है। जिसका निराकरण शीघ्रता से नहीं हो पाता है।

निराकार ब्रह्म के उपासक निराकार मान्यता को दृढता से थामे हुए हैं और साकार ब्रह्म की आलोचना करते हैं। साकार ब्रह्म का उपासक निराकार ब्रह्म की उपासना को कठिन मानता है। और उसका अनुकरण नहीं करना चाहता। यह सब उपासना विधि का संशय है जो जीवनपर्यंत रहता है शीघ्र समाप्त नहीं होता। इस प्रकार की मान्यताओं में विशिष्ट तथ्य यह है कि हम उस असीम परमात्मा को अपनी बुद्धि के अनुसार रचना, गढना, व्याख्यापित करना चाहते हैं। हम उस अखण्ड ईश्वर को अपने विवेक के आधार पर प्रदर्शित करना चाहते हैं। यह परमात्मा की व्याख्या का कुत्सित प्रयास है जिसे मनुष्य करता है और वह अपने को ज्ञानवान समझता है तथा परमात्मा के बारे में विद्वता पूर्ण स्थिति मानता है। इस संबंध में इतना ही कहना आवश्यक होगा कि हम उस सृष्टि कर्ता ब्रह्म को अपनी तुच्छ बुद्धि से वर्णित करने तथा उसे आकार प्रदान करने का कार्य न करें। यह कार्य उचित नहीं होगा। उपासना विधि के संशय का निवारण हो जाए तो संशय रहित उपासना के क्रियान्वयन से हमें मुक्ति प्राप्त हो सकती है। उपासना विधि का संशय किस प्रकार निवारित होगा इसका अवलोकन कीजिए।

1–उपासना विधि के संशय का निवारणः–

उपासना विधि के संशय का निवारण सहजता से हो सकता है। कोई भी दृढ मान्यता को सरलता से तभी त्यागा जा सकता है जब हमें तार्किक रूप से यह ज्ञात हो जावे कि यह मान्यता जिसका हम अनुकरण कर रहे हैं वह सही नहीं है। पहले हम अपनी तुच्छ बुद्धि से ब्रह्म के साकार निराकार, सगुण निर्गुण होने की मान्यता तथा

विचार का दृढता से परित्याग कर दें। परमात्मा निराकार है तो भी वो आकार ले सकता है और सगुण है तो निर्गुण भी हो सकता है।

इस परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड की रचना की है वह सहजता पूर्वक समग्र ब्रह्माण्ड का संचालन भी कर रहा है। वह क्या नहीं हो सकता? अर्थात् सब कुछ हो सकता है। कोई मनुष्य चाहे वह वर्तमान में हो अथवा अतीत में हो चुका हो वह ब्रह्म नहीं हो सकता। यह तथ्य स्पष्ट समझ लें कि मनुष्य का जन्म होता है परंतु ब्रह्म अजन्मा है, उसका जन्म न होकर अवतरण होता है। हम सब प्रकृति के अधीन हैं और वह प्रकृति उस परमात्मा के अधीन रहती है। इस कारण परमात्मा के बारे में अपने पूर्वाग्रह को निकाल देना चाहिए। वह परमात्मा ही सर्वत्र व्याप्त है, सब कुछ है। सब कुछ करने की शक्ति रखता है ऐसा विचार करें। हम किसी भी मान्यता, विचार, सिद्धांत के अनुयायी है तो उसके बंधन का परित्याग हमें करना चाहिए। हम एकमात्र परमात्मा के सर्वांगीण मान्यता के अनुसार हैं। ऐसा विचार रखें वह परमात्मा हमें देख रहा है और हम उसे देख रहे हैं। वह हमें सुन रहा है और हम उसे सुन रहे हैं। वह हमारे अति निकट है और हम उसके अति निकट हैं। वह हममें समाया है, और हम उसमें समाये हैं।

परमात्मा का एक विशिष्ट नाम, निर्देश है जिसे ॐ तत् सत् कहा जाता है। इस कारण वाणी से उसके नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह उसके याद करने का, स्मरण करने का एक प्रामाणिक तथ्य है। इस उच्चारण हेतु, जप हेतु पहले बहुत प्रयास करना पड़ता है क्योंकि पुनः–पुनः यह जप की क्रिया बाधित होती है। जब क्रिया रूकती है तो उसे पुनः आरंभ करना पड़ता है। जब स्मृति में यह तथ्य आता है कि जबकि क्रिया रूकी हुई है तो हम पुनः उसे आरंभ करते हैं। स्मरण करने से परमात्मा के नाम का जप करने से हमें बहुत आध्यात्मिक लाभ होता है। हम कोई भी कार्य करें परंतु उसके नाम का जप करें और स्मरण रखें कि वह परमात्मा हमारे साथ है, इसमें निरंतरता लाने का प्रयास करें।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि मन से संसार के बारे में विचार चलता है और बुद्धि मन के द्वारा ही विचारित विषयों का विनिश्चय करती है। यह कार्य स्वतः चलता रहता है और समाप्त नहीं होता है। प्रत्येक मनुष्य चाहे वह कोई हो मन तथा बुद्धि से संसारिक चिंतन और विनिश्चय का कार्य करता है। मन से संसार के विषयों का

विचारण तथा बुद्धि से उन विचारित विषयों के विनिश्चय के स्थान पर हम परमात्मा के गुण, प्रभाव, स्वरूप आदि के विषय में विचार करें तथा उसी के बारे में विनिश्चय करें। हमें इसके लिए संसार के विचारों और विनिश्चय का कार्य समाप्त करना पड़ेगा। यदि हमने संसार के विषयों का विचारण समाप्त कर दिया और परमात्मा के विषयों का विचार आरंभ कर दिया तो उसी के बारे में विनिश्चय स्वतः होने लगता है। यह क्रिया भी हमें ही करनी पड़ती है। हम संसार के बारे में कितना भी विचार करते हैं और कितना विचार परमात्मा के बारे में करते हैं यह हम जानते हैं। संसार के बारे में विचार समाप्त करना है और परमात्मा के बारे में विचारों को लाना है, यह बिना प्रयोगात्मक रूप सहज नहीं है। संसार के बारे में जो विचार चलते हैं वे सहजता से मन से नहीं हटते हैं। क्योंकि मन में संसार रमा हुआ है और संसार में मन रहा है, इसलिए मन की गति संसार की ओर है और मन संसार में भटकता है। जहां पहले मन रहा था वहीं पुनः पुनः अनायास ही जाता है। संसार से मन को हटाना परमात्मा में रमाना कोई सहज कार्य नहीं है। साधन से, अभ्यास से यह कार्य साधक को करना पड़ता है। निरंतर अभ्यास से यह क्रिया पुष्ट होती है। जगत में निरंतर रहने के कारण जगत से हटना सहजता का कार्य नहीं है। अतः परमात्मा में न रहने के कारण परमात्मा में अपने को रमाना सहज कार्य नहीं है। बड़े प्रयास से हमें यह करना पड़ेगा। इसमें कोई पूजा–पद्धति का कहीं कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार उपासना विधि के संशय का निवारण हो जाता है।

2– मुक्ति की प्राप्ति :–

वाणी से परमात्मा के नाम का जप और उसमें निरंतरता का आभास विशिष्ट प्रकार की उपासना है। समस्त प्रकार के यज्ञों में जप यज्ञ अर्थात् परमात्मा के नाम का उच्चारण श्रेष्ठ है। भगवान की विभूति होने के कारण भी जप यज्ञ उत्कृष्ट है। परमात्मा के नाम के निरंतर जप से समस्त प्रकार के संशयों का स्वतः ही विनाश हो जाता है। परमात्मा के नाम के जप से विशिष्ट आध्यात्मिक लाभ होता है। इसका क्या कारण है? जैसे हम किसी मनुष्य को उसका नाम लेकर पुकारते हैं तो वह मनुष्य स्वतः ही हमारी ओर आकृष्ट हो जाता है। क्योंकि वह जानता है कि हमें कोई पुकार रहा है। इसी प्रकार परमात्मा हमारे हृदय में वास करता है और जब हम उसके नाम का जप करते है ंतो उसे एक प्रकार उसका नाम लेकर पुकारते हैं। ऐसा करने से वह परमात्मा हमारी

ओर आकृष्ट होता है। हम जितना नाम जप करते हैं उतना ही परमात्मा हमारी ओर आकर्षित होता है। जब हमारे नाम जप में निरंतरता आ जाती है तो परमात्मा हमारी ओर आकृष्ट रहता है तो हमउ से निरंतर पुकार रहे हैं। किसी को निरंतर पुकारने से वह हमारी ओर आकृष्ट रहेगा।

परमात्मा तो हमारे हृदय में विराजमान है इस कारण वह हमें लगातार देख रहा है। और जब हम उसे पुकारते है ंतो वह हमारी तरफ देखता रहता है। यह साधना की उत्कृष्ट स्थिति है जो शीघ्रता से प्राप्त नहीं की जा सकती है। साधक जब निरंतर प्रयास करता है तो यह स्थिति प्राप्त हो जाती है। अंतर रहित जप की परख स्वतः जप से होती है। जप जिह्वा के बिना हिले–डुले अंतर्मन से जप होता है तो वह स्वतः ही होता है। यह स्थिति एक स्वचालित मशीन की तरह होती है। ऐसे में साधक संसार में रहकर भी परमात्मा के नाम का जप करता है। इस प्रकार मृत्युकाल में भी यदि निरंतर जप होता है तो मनुष्य को मुक्ति सहजता से प्राप्त हो जाती है। अंतकाल में परमात्मा का स्मरण करते हुए जो देह त्यागता है वह परमात्मा को निश्चित ही प्राप्त होता है। यह स्थिति अत्यंत दुर्लभ है परंतु प्रयास से प्राप्त करने योग्य है।

परमात्मा में मन तथा बुद्धि को स्थापित कर देने से भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है। हम मुक्त क्यों नहीं हैं? हम बध्य क्यों हैं, क्योंकि हमने मन और बुद्धि में संसार को बसाया हुआ है। साधारणतया मन संसार की वस्तुओं, विषयों के बारे में विचार करता है तथा विचारित वस्तुओं, विषयों और स्थितियों को प्राप्त करने की चेष्ठा करता है। मन जो विचार करता है उसका विनिश्चय बुद्धि कर डालती है। तदोपरांत उस वस्तु विषय और स्थिति की प्राप्ति का यत्न होता है। हम यदि मुक्ति चाहते है ंतो परमात्मा के बारे में विचार करें और संसार के बारे में विचार को समाप्त करें क्योंकि संसार के बारे में विचार करने से संसार प्राप्त होता है और परमात्मा के बारे में विचार करने से हमें परमात्मा प्राप्त होता है। यहां यह संशय होता है कि हम उस परमात्मा के बारे में कितना विचार कर सकते हैं? उसका उत्तर है कि जितना संसार के बारे में विचार कर सकते हैं उतना ही परमात्मा के बारे में विचार हो सकता है। संसार के बारे में जब विचारों में शून्यता आ जाएगी तो परमात्मा के बारे में विचारों की पराकाष्ठा होगी। क्योंकि हम संसार के बारे में विचार करते है ंतो परमात्मा के बारे में विचारों की शून्यता आ जाती है।

हम जब तक जागते है तब तक संसार के बारे में विचार करते रहते हैं यही विचारों में हमें परिवर्तन करना पड़ेगा। हमें जागृत अवस्था में परमात्मा के बारे में विचार करना पड़ेगा और उन विचारों को बुद्धि से विनिश्चय करना पड़ेगा। साधक यह स्थिति देखे कि कितनी देर संसार में रहता है और कितनी देर परमात्मा में रहता है। संसार में रहना तथा परमात्मा के बारे में विचार करना ही व्यभिचारिणी भक्ति है तथा केवल परमात्मा के बारे में विचार करना तथा उसके बारे में ही चिंतन करना यह अव्यभिचारिणी भक्ति है। अव्यभिचारिणी भक्ति ही मुक्ति का कारण होती है। हम जब पूर्ण रूप से परमात्मा में मन लगा देंगे तथा बुद्धि को उस परमात्मा में निवेशित कर देंगे तो परमात्मा हमें सुलभ हो जाएगा। तब तक नहीं सुलभ होगा जब तक हम अपनी मन और बुद्धि को संसार में रखेंगे। हम अपनी परख स्वयं कर लें और मुक्ति की पात्रता को जान लें। हम जब ये स्थिति प्राप्त कर लेंगे तो मुक्ति सहज ही उपलब्ध हो जाएगी।

ख– मार्गदर्शक का संशय :–

वैसे तो प्रत्येक मार्ग में मार्गदर्शक की भूमिका महत्वपूर्ण है परंतु आध्यात्मिक मार्ग में, साधना पथ में मार्गदर्शक महत्वपूर्ण है जिसे गुरू अथवा आचार्य कहा जाता है। प्रत्येक ज्ञान में गुरू की आवश्यकता होती है। बालक की प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक आचार्यों की आवश्यकता रहती है। आचार्य हमें बताता है कि किस प्रकार से अध्ययन करें क्योंकि वह अपने विषय में पारंगत होता है। अध्ययन क्षेत्र में आचार्य की अनिवार्य आवश्यकता है जिसके सहारे साधना में अनेक आयाम तय करता है। आध्यात्म एक ऐसा मार्ग है जिसमें पथ–पथ पर संशय उपस्थित होते हैं। इस कारण साधक को संशयों के निवारणार्थ आचार्य की आवश्यकता होती है। आध्यात्म का मार्गदर्शक कैसा हो? यह प्रश्न रहता है। इस निराकरण हेतु यह कहा जा सकता है कि आध्यात्म के मार्गदर्शक में चार गुण विशेष होने चाहिए जो निम्न प्रकार हैं–

1– शास्त्रों के अध्ययन से परिपूर्ण हो।

2– शास्त्रों की व्याख्या सम्यक् प्रकार से करता हो।

3– सत्य–असत्य का निर्णय करने में सक्षम हो।

4– तत्वज्ञ महापुरूष हो।

आध्यात्म के मार्गदर्शक में उपरोक्त चारों गुण होने चाहिए, यदि नहीं हैं तो वह आचार्य अथवा गुरू की पदवी को विभूषित नहीं कर सकता है। इस कारण मार्गदर्शक के संबंध में यह संशय समाप्त कर देना चाहिए कि वह किस प्रकार का हो। उपरोक्त चारों गुणों से संपन्न मनुष्य ही मार्गदर्शक बनने के योग्य होता है। यदि उसमें उपर्युक्त गुण नहीं है ंतो वह गुरू हमें आध्यात्म की पूर्णता की ओर नहीं ले जा सकता है। आधे–अधूरे ज्ञान से आवृत मनुष्य हमें मुक्ति के मार्ग तक नहीं ले जा सकता है। ज्ञान की अपूर्णता मनुष्य को साधन पथ पर पुनः–पुनः विचलित करती है। यदि हमें वांछित मार्गदर्शक, गुरू, आचार्य प्राप्त न हो सके तो स्वयं हमें शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए तथा परमात्मा को गुरू मान लेना चाहिए। वह सुहृद परमात्मा हमारे हृदय में विराजमान है। हम जब उसे गुरू मान लेते हैं तो वह हमें उचित मार्गदर्शन देते हैं। परमात्मा सर्वत्र व्याप्त है तथा हमारे हृदय में होने के कारण अति निकट है। इस कारण जब हम साधना आरंभ करते है ंतो वह स्वतः ही हमारे विचारों के रूप में प्रकट होता है और हमारा मार्गदर्शन करता है। इस कारण जब तक हमें उचित गुरू न प्राप्त हो तब तक हमें परमात्मा को ही गुरू मानकर अपनी साधना करनी चाहिए। वह परमात्मा हमें निश्चित रूप से ही मार्गदर्शन उपलब्ध करा देते हैं। इस प्रकार मार्गदर्शक के संशय का निवारण कर लेना चाहिए।

ग– शास्त्रीय संशय :–

आध्यात्म में रूचि रखने वाला मनुष्य अनेक प्रकार के शास्त्रों का, धर्म ग्रंथों का अध्ययन करता है। अनेक प्रकार के धर्मग्रंथों के अध्ययन से अनेक प्रकार के सिद्धांतों का ज्ञान होता है। अनेक प्रकार के सिद्धांत मनुष्य को भ्रमित कर देते हैं। सृष्टि की रचना का सिद्धांत, सृष्टिकर्ता की क्रिया विधि, सृष्टि की उत्पत्ति के प्रकार, देवी–देवताओं की श्रेष्ठता तथा उनका क्रम आदि अनेक संशय हैं जो पृथक्–पृथक् शास्त्रों और पौराणिक ग्रंथों के अध्ययन से उत्पन्न हो जाते हैं। वैदिक साहित्य विशाल साहित्य है जिसमें असंख्य ग्रंथ हैं। कुछ मूल हैं और कुछ उनके भाष्य हैं जिनके अध्ययन से साधक में अनेक प्रकार के शास्त्रीय संशय स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। कौन सा तथ्य सही है? और कौन सा भ्रामक है? यह विचार मन में आता–रहता है।

विभिन्न प्रकार के धर्मग्रंथों का अध्ययन करने से साधक में अनेक संशय उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह आध्यात्म के मौलिक सिद्धांतों का विनिश्चय करने में भ्रमित हो जाता है और इस भ्रम को ही शास्त्रीय संशय कहा जाता है। शास्त्रीय संशय का निवारण उचित ज्ञान से हो जाता है। उपनिषदों में दो प्रकार की विद्या का वर्णन आता है जिसे अपराविद्या तथा पराविद्या कहा जाता है। अपरा विद्या के दस भेद कहे गए हैं जो निम्न प्रकार हैं–

1 से 4 तक– ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यजुर्वेद इन चारों वेदों का विभाग महर्षि वेद व्यास ने किया था। महर्षि वेदव्यास ने इन चारों संहिताओं को अपने चार शिष्यों महर्षि पैल को ऋग्वेद का, महर्षि जैमिनी को सामवेद का, महर्षि वैशम्पायन को यजुर्वेद का तथा महर्षि सुमंतु को अथर्ववेद का ज्ञान करवाया था।

5– शिक्षा– पवित्र वेदों का उच्चारण जिस विधि से किया जाता है उसे शिक्षा कहा जाता हैं।

6–कल्प– यज्ञ तथा याग की विधि का वर्णन इसमें होता है उसे कल्प कहते हैं।
7–व्याकरण– वैदिक और लौकिक शब्दों के प्रयोग आदि के बारे में जो ज्ञान है वो व्याकरण कहलाता है।

8–निरूक्त– वैदिक शब्दों के संग्रह को निरूक्त कहा जाता है।

9–छंद– वैदिक छंदों की जाति तथा भेद का जिससे ज्ञान होता है।

10–ज्योतिष– ग्रह और नक्षत्रों की स्थिति के संबंध में जिससे ज्ञान होता है।

पराविद्या–ब्रह्म विद्या के ग्रंथों को पराविद्या के ग्रंथ कहा जाता है। इन ग्रंथों से परमात्मा के गुण स्वरूप, प्रभाव, कार्य तथा उसकी अनुभूति के उपायों का वर्णन किया गया है। विद्वानों ने इन ग्रंथों को तीन भागों में बांटा है। जिसे प्रस्थानत्रयी कहा जाता है। प्रस्थानत्रयी में तीन ग्रंथों का उल्लेख होता है जिसे वेदों की अंतिम भाग उपनिषद तथा दार्शनिक ग्रंथों के श्रेष्ठ ग्रंथ ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता कहा जाता है। उपनिषद् को वैदिक प्रस्थान, ब्रह्मसूत्र को दार्शनिक प्रस्थान और श्रीमद्‌भगवद्‌गीता को स्मार्त प्रस्थान कहते हैं।

उपनिषद ब्रह्मविद्या के सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ हैं तथा वेदों का अंतिम भाग होने के कारण वेदांत कहे जाते हैं। वेदों का ज्ञान काण्ड इन्हीं के द्वारा वर्णित किया गया है। उपनिषदों की संख्या विशेष रूप से 11 है परंतु इसके अतिरिक्त भी अन्य उपनिषद भी उपलब्ध है।

भारतीय आध्यात्म के दार्शनिक ग्रंथों की संख्या छः है जिन्हें ब्रह्मसूत्र अर्थात वेदांत दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, न्याय दर्शन, मीमांशा दर्शन तथा वैशैशिक दर्शन कहा जाता है। उपरोक्त दार्शनिक ग्रंथ महर्षि वेदव्यास, महर्षि कपिल, महर्षि पतंजलि, महर्षि गौतम, महर्षि जैमिनी, महर्षि कणाद द्वारा रचे गए हैं। ब्रह्मर्षि नारद द्वारा रचित नारद भक्ति सूत्र भी दार्शनिक ग्रंथ माना जाता है। इन समस्त ग्रंथों को वेदों का उपांग कहा जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता जो महाभारत महाकाव्य का अंश है जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने कुरूक्षेत्र के मैदान में अर्जुन के विषाद को समाप्त करने के लिए अपने श्रीमुख से उपदेशित किया था, यह ब्रह्मविद्या का विशिष्ट ग्रंथ है तथा इसे प्रस्थानत्रयी ने उत्कृष्टता प्राप्त है। ऐसा विद्वानों का मत है।

पराविद्या के जो भी ग्रंथ हैं उनमें श्रीमद्भगवद्गीता को इसलिए विशेषता प्राप्त है क्योंकि वह श्री भगवान की साक्षात् वाणी है। श्रीभगवान ने जो भी उपदेश दिया है वो परमात्मा के रूप में दिया है। इस कारण इसे ब्रह्म वाक्य भी कहा जाता है। दार्शनिक ग्रंथों, उपनिषदों और श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेक प्रकाण्ड विद्वानों, आचार्यों तथा तत्वज्ञ महापुरूषों ने अनेक भाष्यों की रचना की है। जिससे अनेक मत भी उत्पन्न हो गए है। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि मत ब्रह्मसूत्र के पृथक्–पृथक् भाष्यों के कारण उत्पन्न हुए। जिनसे कभी–कभी शास्त्रीय संशय उत्पन्न हो जाता है परंतु श्रीमद्भगवद्गीता को मौलिक रूप से पढ़ने से और उसके श्लोकों के मूल अर्थों के चिंतन से समस्त प्रकार के शास्त्रीय संशय स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं।

27– विश्व के धार्मिक ग्रंथों की समीक्षा और उनसे संशय निवारण–:

विश्व में अनेक धर्म व संप्रदाय हैं जिनके अपने धर्मग्रंथ हैं। विश्व के संप्रदाय के धर्मग्रंथों का जब हम अध्ययन करते हैं और साथ ही भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों का अध्ययन करते है ंतो हमें विशिष्टता भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों में प्रतीत होती है। भारतवर्ष में जितना आध्यात्मिक चिंतन हुआ उतना विश्व में कहीं नहीं हुआ। समग्र ग्रंथ

भारतीय मनीषियों के आध्यात्मिक चिंतन का विशिष्ट संकलन है। एक तथ्य स्पष्ट समझें कि भारत भूमि पर परमात्मा ने अवतरित होकर श्रीमद्भागवद्गीता का उपदेश दिया। ऐसी घटना विश्व में कहीं नहीं हुई। परमात्मा का अवतरण कहीं नहीं हुआ। श्री गीता जी के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह वाणी वस्तुतः परमात्मा की ओर से ही उपदेशित की गयी वाणी है। जिसमें कहीं कोई त्रुटि नहीं है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

प्रत्येक तथ्य के और विषय के दो पक्ष होते हैं एक सैद्धांतिक व दूसरा प्रयोगात्मक। सैद्धांतिक पक्ष में विचारों का प्रस्तुतीकरण किया जाता है और प्रयोगात्मक पक्ष में उन विचारों को परखा जाता है जिससे उन विचारों की सिद्धि हो सके। भगवद्गीता के सैद्धांतिक पक्ष का अध्ययन करके यदि आप उसे प्रयोगात्मक रूप से परखना चाहेंगे तो आपको सत्य की वास्तविक अनुभूति होगी। जैसे साधक परमात्मा का निरंतर स्मरण करके अनन्य चित्त हो जाए तो उसे परमात्मा सहज ही सुलभ हो जाता है। इस तथ्य का आप प्रयोग कर सकते हैं तथा परमात्मा का निरंतर स्मरण करके अनन्य चित्त होकर उसे सहजता से प्राप्त कर सकते हैं। यह एक तथ्य है कि भगवद्गीता का सैद्धांतिक पक्ष है और उसे प्रयोगात्मक आधार पर अनुभव किया जा सकता है। अनुभव से सत्य की प्रतीति हो जाती है।

इन ग्रंथों का उल्लेख उपरोक्त प्रकार से हो चुका है उनके अतिरिक्त भी भारतीय आध्यात्मिक दर्शन में असंख्य विशिष्ट ग्रंथ है। इनसे आध्यात्मिक प्रकाश हो जाता है। अनेक स्मृतियां तथा भगवान श्रीराम की चर्चा वाले अनेक ग्रंथ है। जिनमें बाल्मीकि रामायण तथा श्रीरामचरितमानस प्रमुख हैं। बौद्ध और जैन संप्रदाय के ग्रंथ भी उत्कृष्ट हैं जिनसे जीवन के मूल सिद्धांतों का अनुभव होता है और तत्वदर्शन सहजता से हो जाता है। भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों में पौराणिक ग्रंथों में भी अपना विशिष्ट महत्व है। पौराणिक ग्रंथों में कथाओं के साथ–साथ मानव जीवन के लिए उपयोगी अनेक तथ्यों का वर्णन हुआ है तथा साथ ही परमात्मा की अनुभूति भी साधनों से सहज रूप से वर्णित किया गया है। मुख्य पौराणिक ग्रंथों की संख्या अट्ठारह है। जिनमें चार लाख श्लोक हैं। एक लाख ग्रंथ वाले महाभारत महाकाव्य तथा चार लाख श्लोकों वाले पौराणिक ग्रंथों की रचना महर्षि वेदव्यास द्वारा की गयी थी ऐसी मान्यता है।

साधक जब कभी अनेक प्रकार के ग्रंथों के अध्ययन से अनेक प्रकार के संशयों से ग्रस्त हो जाये तो उसे अपने समस्त प्रकार के संशयों के निवारण हेतु भगवद्गीता के सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए। श्री भगवान की साक्षात् वाणी होने के कारण उसमें आध्यात्मिक दर्शन का ऐसा वर्णन है जो समस्त प्रकार के संशयों के निवारण के लिए सक्षम है। भगवद्गीता में समस्त वैदिक सिद्धांतों तथा दार्शनिक ग्रंथों के तत्वों का समावेश किया गया है जिससे हमें वैदिक और दार्शनिक साहित्य का सार तत्व स्वतः ही सहजता से समझ में आ जाता है। पवित्र वेदों की तरह ही भगवद्गीता भी अपौरूषैय है, स्वतः प्रमाण है, और इसके श्लोक भगवान की श्रीवाणी होने के कारण मंत्र रूप में हैं। हमें समस्त प्रकार के शास्त्रीय संशयों का निवारण भगवद्गीता से कर लेना चाहिए। भारतवर्ष में जितने भी विशिष्ट संत–महापुरूष, दार्शनिक, विचारक सिद्ध योगी हुए हैं उन सबने भगवद्गीता के सिद्धांतों का आश्रय ग्रहण किया है।

28– विश्व की धार्मिक रचनाओं की स्थिति :–

विश्व में जो भी धार्मिक ग्रंथ हैं उन्हें रचनाकारों के आधार पर चार भागों में विभक्त किया जा सकता है। यह चार प्रकार निम्न हैं–

1– विचारकों, दार्शनिकों तथा मनुष्यों द्वारा लिखे गए ग्रंथ।

2– तत्त्वदर्शी सिद्ध महापुरुषों द्वारा रचित ग्रंथ।

3– ईश्वरीय वाणी के रूप अवतरित ग्रंथ ।

4– ईश्वर की साक्षात् वाणी के रूप में उद्घोषित ग्रंथ।

विचारकों , दार्शनिकों, मनीषियों ने आध्यात्मिक विषयों पर असंख्य ग्रंथ लिखे हैं। वेद–वेदांग, उपनिषदों और दार्शनिक ग्रंथों में जो टीकाएं एवं भाष्य लिखे गए हैं वे सब के सब मनीषियों द्वारा ही लिखे गए हैं। विश्व के अन्य धर्म संप्रदायों में उनके मौलिक ग्रंथों पर जो टीकाएं लिखी गयी हैं उन सभी को इन्हीं के अंतर्गत मानना चाहिए। उक्त के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से भी अनेक आध्यात्मिक विषयों पर समीक्षात्मक एवं विवरणात्मक ग्रंथ लिखे गए हैं। दार्शनिक, चिंतक, विचारक की बुद्धि तथा उसका

अनुभव जहां तक पहुंच पाता है वहां तक वे अपने विचार प्रस्तुत कर देते हैं। आज विश्व में अनेक संप्रदाय मत—मतांतर अनेक विचारकों एवं दार्शनिकों के कारण ही हैं।

तत्त्वदर्शी महापुरूषों तथा सिद्धजनों द्वारा भी अनेक प्रकार के आध्यात्मिक ग्रंथ लिखे गए हैं। षड्दर्शन, स्मृतियां आदि ग्रंथ सिद्ध महापुरूषों द्वारा लिखे गए हैं जिसमें परमात्मा की अनुभूति का पृथक्—पृथक् विवरण है। यह ग्रंथ भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि यह अनुभवजन्य सिद्धांतों पर लिखे गए हैं। महाभारत महाकाव्य और समस्त प्रकार के पौराणिक ग्रंथों की श्रेणी में मानना चाहिए। तीसरे प्रकार के ग्रंथों को अवतरित ग्रंथ कहा जाता है। जो परमात्मा की वाणी होने के कारण अपौरूषैय भी हैं। इन ग्रंथों के बारे में ऐसी मान्यता है कि यह परमात्मा के संदेश के रूप में अनेक महापुरूषों पर अवतरित हुए। पवित्र वेदों, उपनिषदों, पवित्र कुरान, पवित्र बाइबिल आदि ग्रंथों के बारे में ऐसी ही मान्यता है। चौथे प्रकार का वह ग्रंथ है जिसे परमात्मा ने साक्षात प्रकट होकर उपदेश के रूप में व्याख्यापित किया है। इस श्रेणी के ग्रंथ में एक मात्र श्रीमद्भगवद्गीता को मान्यता प्राप्त है। जो ब्रह्मवाणी के रूप में भगवान श्रीकृष्ण के मुख से अवतरित हुआ। विश्व में ऐसा कोई ग्रंथ उपलब्ध नहीं है।

29— समस्त प्रकार के संशयों के निवारण का एक सरल उपायः—

मनुष्य के अंतःकरण में जितने प्रकार के संशय होते हैं चाहे वह कर्म के बारे में हो अथवा आध्यात्मिक ज्ञान के विषय में हो उनके निवारण का एकमात्र सरल उपाय है परमात्मा के नाम का निरंतर जप। जब साधक जप करता है तो परमात्मा उसकी उसकी ओर आकृष्ट होते हैं तथा वे चूंकि हमारे में हृदय में उपस्थित हैं और अंतःकरण में भी उनका प्रभाव है। इस कारण हमारे अंतःकरण अर्थात मन व बुद्धि में जितने प्रकार के संशय उठते हैं वह सब परमात्मा के द्वारा स्वतः ही विचार के रूप में निवारित हो जाते हैं। इस कारण साधक को परमात्मा के नाम के जप का अवलंबन लेना चाहिए और समस्त प्रकार के संशयों का स्वतः ही निवारण कर लेना चाहिए। यह समस्त संशयों के निवारण करने का एकमात्र सहज उपाय है।

30– प्रतिकूलता के बारे में संशय :–

मनुष्य के समक्ष दो स्थितियां आती हैं एक प्रतिकूल व दूसरी अनुकूल। अनुकूलताओं में हम प्रसन्न होते हैं और प्रतिकूलताओं में हमें दुख का आभास होता है। यह सब स्वतः स्वचालित सा होता है। हमारे समक्ष प्रतिकूलताओं के बारे में अनेक प्रकार के संशय होते हैं। कुछ लोग इसे ग्रहों आदि का चक्कर बताते हैं तथा नाना प्रकार के तांत्रिक एवं ज्योतिषीय उपचारों को करने को कहते हैं। हमारे समक्ष जो प्रतिकूलताएं उत्पन्न होती हैं वह हमारे ही शास्त्र प्रतिकूल कर्मों का परिणाम है। जब हमारे संचित दुष्कर्म अपना परिणाम प्रकट करते हैं तब हमारे समक्ष स्वतः ही प्रतिकूलताएं आ जाती हैं। प्रतिकूलताओं के आत्यंतिक निवारण का एकमात्र उपचार है परमात्मा की एकमात्र शरण ग्रहण कर लेना और शास्त्रों का अध्ययन करके शास्त्र सम्मत कर्मों का संपादन करना। प्रतिकूलताओं के समापन के अन्य जितने भी उपाय हैं जो ज्योतिष आदि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं वे सब के सब संशय युक्त हैं, शास्त्र सम्मत नहीं हैं। उन उपायों से हमारी प्रतिकूलताओं का पूर्णतः निराकरण भी नहीं होता। इस कारण प्रतिकूलताओं के समग्र निवारण के निराकरण के लिए हमें एक एकमात्र परमात्मा की शरण ग्रहण कर लेनी चाहिए। यही प्रतिकूलताओं के निवारण का एकमात्र विशिष्ट उपाय है।

समापन 26 जुलाई 2012

* * *